ना० ११

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

Recd 11-4-87

कल्याण

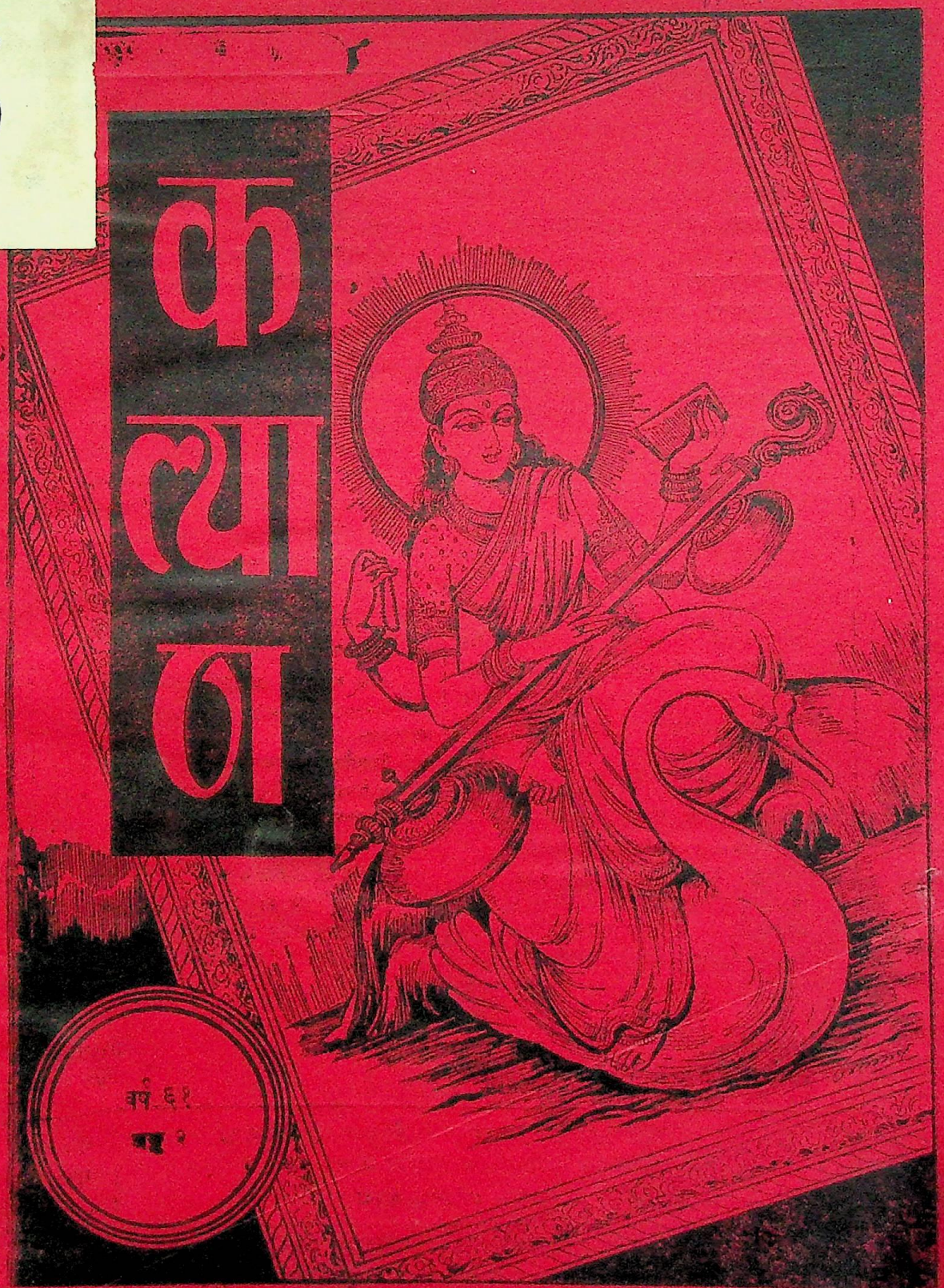

वर्ष ६१
अङ्क १

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्टाङ्क

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,९०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, फरवरी १९८७ ई०

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—चिदानन्द-लहरी	५४५
२—कल्याण ('शिव')	५४६
३—अमृतेश्वरी विद्या (पं० श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)	५४७
४—सप्तश्लोकी दुर्गा	५४९
५—श्रीभास्करराय भारतीका शक्ति-उपासनामें योगदान (श्रीवटुकनाथजी शास्त्री खिस्ते)	५५०
६—नवरत्नमाला	५५६
शक्तिसाधना—	
७—'अजपागायत्री-शक्ति-उपासना (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती 'टेम्बे स्वामी')	५५७
८—मातृदेवी-उपासनाकी परिकल्पना (डॉ० श्रीजनार्दनजी उपाध्याय, एम्० ए०)	५६०
९—शक्ति-उपासना—प्रवृत्तिमार्गीय साधना (प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय)	५६१
१०—शक्तिपूजामें प्रस्तर-मूर्तिकला और भारत	५६४
११—श्रीस्तुति	५६५
१२—श्रीवैष्णव-सम्प्रदायमें शक्ति-उपासना (श्रीरामपदारथसिंह)	५६६
१३—ज्योतिष-शास्त्रमें शक्ति-उपासना (श्रीकृष्णपालजी त्रिपाठी, एम्० ए०)	५६८
१४—जैनधर्मकी महाशक्तियाँ—भगवती पद्मावती, सरस्वती तथा कुछ अन्य देवियाँ (डॉ० श्रीनाथूलालजी पाठक)	५६९
१५—बौद्धधर्ममें शक्ति-उपासना (स्व०दीवानबहादुर श्रीनर्मदाशंकर देवशंकर मेहता, बी० ए०)	५७१
१६—श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीकी शक्ति-उपासना (श्रीरामनारायणजी चोधी, एम्० ए०)	५७४
१७—महाकवि श्रीहर्षकी शक्ति-उपासना (श्रीराघवेन्द्र चतुर्वेदी, 'पंकज')	५७५
१८—जगद्गुरु शंकराचार्यकृत परापूजास्तोत्र-स्तोत्रका एक अंश	५७७
१९—पाञ्चरात्र-आगम और लक्ष्मी-तन्त्र (श्रीरामप्यारेजी मिश्र, एम्० ए०)	५७८
पराशक्तिके परम उपासक—	
२०—३०—विशालाक्षीसे प्रेरित कृष्णभक्त चण्डीदास, शक्ति-साधक महाकवि रामप्रसाद, कालीके अनन्य भक्त सिद्ध कवि कमलाकान्त-श्रीरामकृष्ण परमहंस (सुश्री निवेदिता चौधरी), त्रिकालज्ञ मुनि वामा क्षेपा, सिद्ध तत्त्वदर्शी महात्मा तैलङ्गस्वामी, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज (पुरुषोत्तमदास मोदी), अम्बे ! [कविता] (कपिलदेवनारायण सिंह), अनन्त श्री स्वामी करपात्रीजी, श्रीअमृतवाग्भवाचार्य, श्रीस्वामी अच्युतानन्दतीर्थ (डॉ० किशनलाल बंशीलाल जायसवाल)	५७९—५९०
कथामृत—	
३१—शिवजीका राधारूप-धारण	५९१
३२—श्रीकृष्णकी प्रेमलीला देखनेका पुरस्कार !	५९२
३३—अचिन्त्यशक्ति त्रिपुराम्बा	५९५
३४—गायत्री-जपसे विरक्तिका दुष्परिणाम	५९७
३५—जगदम्बाकी असीम करुणा	५९८
३६—मानवताकी रक्षा एवं देशकी उन्नतिके लिये गोरक्षा अनिवार्य (महामहिम राष्ट्रपतिजीका उद्बोधन) (राधेश्याम खेमका)	५९९
३७—देवीमयी	६००

चित्र-सूची

१—हंसवाहिनी सरस्वती	(रेखा-चित्र)	आवरण-पृष्ठ
२—श्रीराजराजेश्वरी भगवती त्रिपुरसुन्दरी	(रंगीन-चित्र)	मुख-पृष्ठ

इस अङ्कका मूल्य १.२५ (भारतमें)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

इस अङ्कका मूल्य १५ पें. (विदेशमें)

गोविन्द-भवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

(भारत सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीराजराजेश्वरी भगवती त्रिपुरसुन्दरी

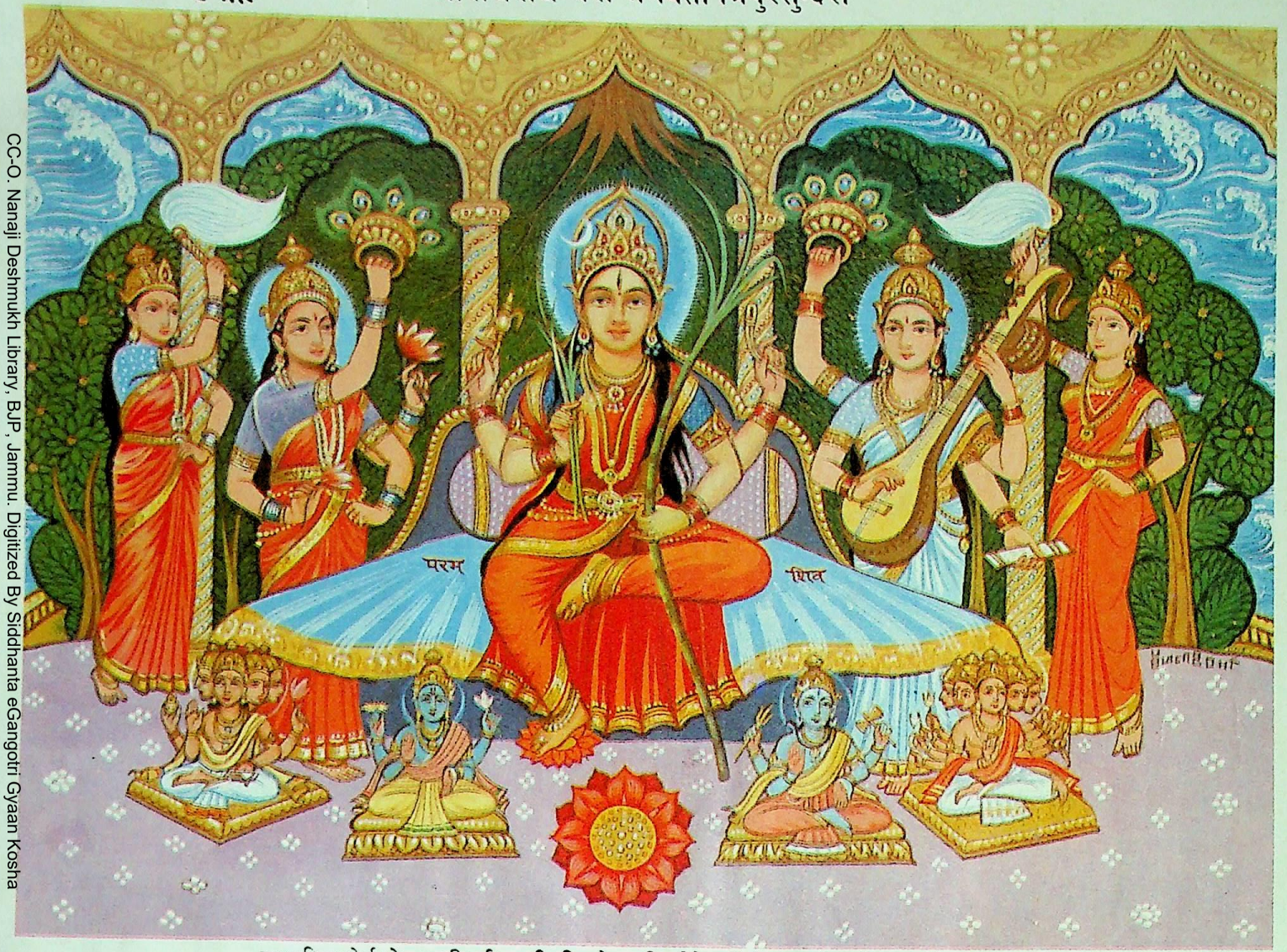

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥

वर्ष ६१ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१२, फरवरी १९८७ ई० { संख्या २ पूर्ण-संख्या ७२३

चिदानन्द-लहरी

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥

'अमृतसागरके मध्य एक मणिमय द्वीप है, जो कल्पवृक्षोंकी वाटिकासे घिरा हुआ है। उस द्वीपके मध्य कदम्बके उपवनसे आवृत चिन्तामणिसे निर्मित एक भव्य भवन है, जिसमें शिवाकार मञ्चके ऊपर स्थित परमशिवस्वरूप पर्यङ्कपर भगवती चिदानन्द-लहरी विराजमान रहती हैं, ऐसी आप भगवतीका जो कतिपय भावुक भक्त निरन्तर भजन करते रहते हैं, वे धन्य हैं ।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

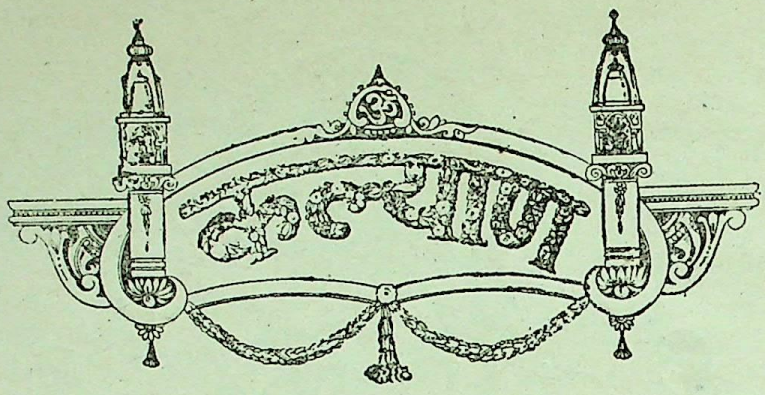

उचित तो यह है कि परमात्मरूपिणी माँकी उपासना करके उनसे कुछ भी न माँगा जाय। ऐसी दयामयी सर्वेश्वरी जननीसे तुम जो कुछ भी माँगोगे, उसीमें ठगा जाओगे। तुम्हारा वास्तविक कल्याण किस बातमें है—इसे तुम नहीं समझते, माँ समझती हैं। तुम्हारी दृष्टि बहुत ही छोटी सीमामें आबद्ध है। माँकी दूरदृष्टि ही नहीं है, वे सर्वेश्वरी माता श्रीकृष्ण और श्रीरामरूपा हैं तथा दुर्गा, सीता, रमा, उमा, राधा, काली, तारा—सर्वस्वरूपा और सर्वज्ञा हैं। तुम्हारे लिये जो भविष्य है, उनके लिये वह वर्तमान है। साथ ही उनका हृदय दयाका अनन्त समुद्र है।

वेदयामयी माता तुम्हारे लिये जो कुछ भी मङ्गलमय होगा—कल्याणकारी होगा, उसीका विधान करेंगी, स्वयं सोचेंगी और सम्पन्न करेंगी; तुम तो बस, निश्चिन्त और निर्भय होकर अबोध शिशुकी भाँति उनका पवित्र आँचल पकड़े हुए उनके वात्सल्यभरे मुखकी ओर ताकते रहो। डरना नहीं, काली, तारा तुम्हारे लिये भयावनी नहीं हैं, वे राक्षसोंके लिये भयदायिनी हैं। भगवान् नृसिंहदेव सबके लिये भयानक थे, परंतु प्रह्लादके लिये भयानक नहीं थे। फिर मातृरूप तो कैसा भी हो, अपने बच्चेके लिये कभी भयावना होता ही नहीं, सिंहनीका बच्चा अपनी माँसे कभी नहीं डरता। अतः उनकी गोदसे कभी न हटो, उनका आश्रय पकड़े रहो।

माँ अपना काम स्वयं करेंगी। यदि माँगोगे तो धोखा खाओगे। पता नहीं, तुम्हें कहीं राज्य मिलनेकी बात सोची जा रही हो और तुम मोहवश कौड़ी ही माँग बैठो। वास्तवमें तो तुम्हें माँगनेकी बात याद ही क्यों आनी चाहिये? तुम्हारे मनमें अभावका—कमीका बोध ही क्यों होना चाहिये? जबकि तुम त्रिभुवनेश्वरी अनन्त ऐश्वर्यमयी माँकी दुलारी संतान हो। माँका सारा खजाना तो तुम्हारा ही है; परंतु तुम्हें खजानेसे भी क्यों सरोकार होना चाहिये? छोटा बच्चा खजाने और धन-दौलतको नहीं जानता, वह तो जानता है केवल माँकी गोदको, माँके आँचलको और माँके दूधभरे स्तनोंको। बस, इससे अधिक उसे और क्या चाहिये? माँ बहुत ही मूल्यवान् वस्तु देकर भी यदि उसे अपनेसे अलग करना चाहे तब भी वह अलग नहीं होगा। वह उस बहुमूल्य वस्तुको—भोग और मोक्षको तृणवत् समझकर फेंक देगा, परंतु माँका पल्ला कभी छोड़ना नहीं चाहेगा। ऐसी दशामें राजराजेश्वरी, सर्वलोकमहेश्वरी माँ भी उसे कभी नहीं छोड़ सकतीं। इसके सिवा शिशु-संतानको और क्या चाहिये? अतएव तुम भी माँके छोटे भोले-भाले बच्चे बन जाओ। सावधान! कभी माँके सामने सयाना बननेकी कल्पना भी मनमें न आने पाये; अन्यथा तुम माँकी परम करुणा, पूर्ण वात्सल्य और स्नेहार्द्रतासे वञ्चित हो सकते हो।

—'शिव'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमृतेश्वरी विद्या

(पं० श्रीगङ्गारामजी शास्त्री)

शक्ति-उपासनामें महाकाली आदि तीन महाशक्ति, नवदुर्गा, दशमहाविद्या, सप्तघृतमातृका, षोडशमातृका तथा चौंसठ योगिनियोंमें कहीं भी अमृतेश्वरीका नामोल्लेख न होनेके कारण पाठकोंको यह नाम कुछ नया-सा प्रतीत हो सकता है। तथापि देवीके इस रूपके सम्बन्धमें शास्त्रमें कहा गया है—

ये चिन्तयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै-
राप्लाव्यमानभुवनामसृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्षाम्॥

'माता! जो लोग अमृतका वहन करनेवाले अपने किरणजालोंसे भुवनोंको आप्लावित करनेवाली आप अमृतेश्वरीका ध्यान करते हैं, वे उस कालकक्षाका उल्लङ्घन कर जाते हैं, जो ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंके लिये भी अलङ्घनीय है।'

काल-गणनामें मनुष्यों, पितरों, देवों और ब्रह्माके दिवस, मास, वर्षका क्रम निर्धारित है। ब्रह्माका सहस्र चतुर्युगीका दिन और इतने ही समयकी रात होती है। ऐसे दिन-रातसे उनकी आयुसीमा भी सौ वर्ष निर्धारित है। इस प्रकार 'आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः' सभी कालकक्षाके अन्तर्गत आते हैं। इस कक्षाको पारकर जो महाकाल है, जिसे अखण्ड काल भी कहते हैं, जिसका विमर्श भावशक्ति है, वहाँ कालकृत क्षयका अभाव है। अमृतेश्वरीके उपासक उस कालकक्षाको पार करनेमें भी समर्थ हो सकते हैं, यही जीवन्मुक्त अवस्था है। मृत्युञ्जय-मन्त्र और भगवान् शिवमहाकालकी आराधनासे व्यक्ति मृत्युसीमा लाँघ सकता है, पर कालकक्षासे बाहर होना तो अमृतेश्वरीकी आराधनासे ही सम्भव है। उन्हीं अमृतेश्वरीके सम्बन्धमें उनके लोकोपकारी स्वरूप और उसकी जानकारीसे किस प्रकार मनुष्य रोग-शोकसे त्राण पा सकता है, इसका संक्षिप्त विवरण देना ही यहाँ अभीष्ट है।

यदि किसी व्यक्तिको पागल कुत्ता, सर्प अथवा कोई भी विषैला जानवर काट ले तो जिस अङ्गमें काटा हो उसका विचार करते हुए देखना चाहिये कि उस तिथिको यदि काटे हुए अङ्गमें अमृतकलाका वास है तो कोई हानि नहीं होगी। यदि उस दिन उस अङ्गमें विषकलाका वास है तो अधिक हानिकी सम्भावना हो सकती है। सर्पदंशके समय देखा जाता है कि एक ही जातिके सर्पके काटनेपर समान उपचार करनेपर भी कोई व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है तो कोई मृत्युको प्राप्त होता है। उसका कारण उस दिन सम्बन्धित अङ्गमें अमृत और विषकी कलाका वास होना ही होता है। साधक अमृतेश्वरीके ध्यान और मन्त्रसे उस अङ्गमें अमृतका संचार करा सकता है। अमृतेश्वरीका मन्त्र इस प्रकार है—

'ऐं ब्लूं ओं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।'

ध्यान इस प्रकार है—

अमृतामृतरश्म्योपसंतर्पितचराचरम्।
भवानि भवशान्त्यै त्वां भावयाम्यमृतेश्वरीम्॥

अर्थात् 'भवानि! आप अमृतकी किरणोंसे चराचरको भली-भाँति तृप्त करनेवाली हैं; अतः भवशान्तिके लिये मैं आप अमृतेश्वरीकी भावना करता हूँ।'

छाया-चिकित्सा-पद्धतिमें पीड़ित अङ्ग और चरणतलमें अमृतकलाके वासका ज्ञान होनेपर उस तिथिविशेषको उपचार किया जाय तो शीघ्र स्वस्थ होनेकी अधिक आशा की जा सकती है। जिस दिन

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस अङ्गमें विषकलाका वास हो उस दिन एक्यूप्रेशर अथवा एक्यूपंक्चरका प्रयोग वर्जित किया जा सकता है; क्योंकि कहा गया है—

स्थाने यस्मिन् नहि विषकला मर्दनं तस्य कुर्यात् ।

—जिस स्थानमें विषकला न हो उसीका मर्दन करना चाहिये । इससे विपरीत करनेसे विषके व्याप्त होनेकी ही सम्भावना रहेगी । आजकल विदेशोंमें विशेषकर भारतमें कहीं-कहीं हिप्नोसिस और दृष्टिपातमात्रसे रोगनिवारण करनेवाले चिकित्सक मिलते हैं । उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि जिस दिन नेत्रोंमें विषकलाका वास हो, उस दिन अपना प्रयोग बंद रखनेसे उन्हें अपने कार्यमें विशेष सफलता मिल सकती है । यह भी जानकारी होनी चाहिये कि उस दिन जिस अङ्गपर प्रभाव डालना अभीष्ट है, वहाँ अमृतकलाका वास होनेसे प्रयोग अधिक प्रभावकारी होगा ।

मन्त्रसे झाड़-फूँक करनेवाले एवं मार्जन-क्रियासे रोगोपशमन करनेवाले लोग अमृतेश्वरी विद्याके ज्ञानसे उस अपवादसे बच सकते हैं, जिसके लिये वे अपने प्रयोगमें कहीं सफल होते हैं और कहीं असफल । ऐसा होनेसे लोग उनकी विद्यापर ही अश्रद्धा करने लगते हैं । सामान्य पुरुष भी यदि इस विद्याका ज्ञान रखते हुए भगवतीकी आराधना करता है तो उसे कभी किसी प्रकारका रोग हो नहीं सकता । उसे अपमृत्यु और अकालमृत्युका भय नहीं रहता । वह बुढ़ापेमें भी वलीपलितसे मुक्त रहकर युवा दिखायी देगा । उसके चेहरेपर एक विशेष प्रकारकी कान्ति रहती है । उसमें एक आकर्षण रहता है, जो सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंको प्रभावित किये बिना नहीं रहता । अङ्गोंमें शुक्ल और कृष्णपक्षके क्रमसे अमृतकला और विषकलाके वासको स्पष्ट करनेके लिये एक तालिका यहाँ दी जा रही है—

शुक्ल पक्षकी तिथि	कृष्ण पक्षकी तिथि	अमृतकलाका वास	विषकलाका वास
प्रतिपदा	चतुर्दशी	पादाङ्गुष्ठ	नाभि
द्वितीया	त्रयोदशी	चरणतल	हृदय
तृतीया	द्वादशी	टखना	कुच
चतुर्थी	एकादशी	पिंडली	कण्ठ
पञ्चमी	दशमी	जंघा	नासिका
षष्ठी	नवमी	उपस्थ	कान
सप्तमी	अष्टमी	नाभि	अङ्गुष्ठ
अष्टमी	सप्तमी	हृदय	चरणतल
नवमी	षष्ठी	कुच	टखना
दशमी	पञ्चमी	कण्ठ	पिंडली
एकादशी	चतुर्थी	नासिका	जंघा
द्वादशी	तृतीया	कान	जंघा
त्रयोदशी	द्वितीया	नेत्र	नाभि
चतुर्दशी	प्रतिपदा	मस्तक	हृदय
पूर्णिमा	—	सिर	कुक्षि

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वरोगहर दृष्टिसाधन

हृदयमें अमृतकलाका वास मानकर भगवती अमृतेश्वरीके अङ्गोंसे झरते हुए अमृतकिरण—रसराशि (अमृता नाडी)द्वारा सारे शरीरका आप्यायन हो रहा है—इस प्रकार छः मासतक ध्यान करनेसे दृष्टिमें आकर्षण, वशीकरण और सम्मोहनकी शक्ति आती है। ऐसा व्यक्ति दृष्टिमात्रसे सभी प्रकारके ज्वर दूर कर देता है। शरीरके किसी भी अङ्गकी पीड़ा और विषका प्रभाव उसके देखनेसे दूर हो जाता है। क्रॉनिक बी.मारियाँ, अल्सर तथा चर्मरोग उसके उस अङ्गपर दृष्टि डालनेमात्रसे ठीक हो जाते हैं। इसे गारुडी विद्या कहा गया है। सौन्दर्यलहरीमें कहा गया है—

किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं
हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः।
स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाधारशिरया॥

इसकी लक्ष्मीधरी टीकामें चतुःशतीका उद्धरण देते हुए कहा गया है—

षण्मासध्यानयोगेन जायते गरुडोपमः।
दृष्ट्या कर्षयते लोकं दृष्ट्यैव कुरुते वशम्॥
दृष्ट्या संक्षोभयेच्चारीं दृष्ट्यैव हरते विषम्।
दृष्ट्या चातुर्थकादींश्च ज्वरान् नाशयते क्षणात्॥
चन्द्रकान्तशिलामूर्तिं चिन्तयित्वा विनाशयेत्।
तापज्वरानशेषांश्च शीघ्रं तार्क्ष्य इवापरः॥

अङ्ग-विशेषमें निवास करनेवाली प्राणकलाका जो सदैव ध्यान करता है, उसके विषयमें बताया गया है—

स्थाने यस्मिन् सा सुधायाः कलास्थे
तत्स्थान् प्राणान् संततं चिन्तयेद् यः।
आयुः पुष्टिः श्रीर्वयःस्तम्भसम्पत्-
तेजोरूपाः शक्तयः तस्य सन्ति॥

जिस तिथिको जिस अङ्गमें अमृतकलाका वास हो उस दिन उसी स्थानमें अमृतेश्वरीका चिन्तन करते हुए जो आराधना करता है, उसे आयु, पुष्टि, यौवनका स्थायित्व और तेजकी प्राप्ति होती है। मन्त्रसाधना और कुण्डलिनी-जागरणमें इसके विशेष प्रयोगपर प्रकाश डालना विस्तारभयके कारण सम्भव नहीं है।

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनि।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः॥

देव्युवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ १॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥ २॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ३॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ५॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ ६॥
सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ७॥

॥ इति सप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीभास्करराय भारतीका शक्ति-उपासनामें योगदान

(पं० श्रीबटुकनाथजी शास्त्री खिस्ते)

सत्रहवीं शतीमें सन् १६७० के लगभग दक्षिण-भारतकी भागानगरी (हैदराबाद)में श्रीभास्करराय भारती नामक एक सूर्य-सदृश व्यक्तिका उदय हुआ, जिसने अपनी लेखनी और चरित्रसे शंकर-परम्परा तथा शक्ति-दर्शनका अभूतपूर्व स्वरूप उपस्थापित किया ।* इनके पिता श्रीगम्भीरराय भारती अनेक शास्त्रोंके प्रकाण्ड पण्डित, आहिताग्नि एवं बीजापुर राज्यके दीवान थे । बीजापुरके यवन नरपतिने श्रीगम्भीररायजीसे महाभारतका आख्यान सुना और उनसे अनुरोध किया कि उसका वे फारसी भाषामें अनुवाद करा दें । तदनुसार उन्होंने उस राजाके लिये सम्पूर्ण महाभारतका अनुवाद प्रस्तुत किया । तबसे उन्हें लोग 'भारती' कहने लगे ।

श्रीगम्भीररायजीने अपना वंश-परिचय 'विष्णु-सहस्रनामपद्यप्रसूनाञ्जलि'-ग्रन्थमें दिया है । तदनुसार विश्वामित्रगोत्रीय एकनाथ इनके मूल पुरुष थे । उनके पुत्र पण्डित तुकदेव तथा उनके पुत्र यमाजि पण्डित हुए । यमाजि पण्डितकी भार्या चन्द्रमाम्बासे श्रीगम्भीरराय उत्पन्न हुए । यद्यपि श्रीगम्भीरराय भागवत सम्प्रदायके अनुयायी थे, परंतु श्रीवत्सगोत्रीय अपने मातुल आगमाचार्य नारायण पण्डितसे इन्होंने समस्त आगमशास्त्रका अध्ययन कर दीक्षा भी ग्रहण की ।

श्रीगम्भीररायकी पत्नी कोणमाम्बाके द्वितीय पुत्रके रूपमें श्रीभास्កररायका आविर्भाव हुआ । प्रथम पुत्रका बहुत संस्कार करनेपर भी उसमें अभीष्ट योग्यता न आनेसे खिन्न होकर कोणमाम्बाने भगवान् भास्करकी तीव्र उपासना की, जिसके फलस्वरूप भास्करराय-जैसा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । श्रीगम्भीरराय जिस समय राजकार्यमें व्यस्त थे, उसी समय हैदराबादमें पुत्र उत्पन्न हुआ ।

श्रीगम्भीररायने भास्कररायजीको बाल्य-अवस्थामें सारस्वतकल्पके अनुसार सरस्वती-मन्त्रपूत ब्राह्मी-लताका सेवन कराया, जिससे उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा विकसित हुई । श्रीभास्कररायका यज्ञोपवीत-संस्कार काशीमें हुआ था । उसके बाद पाँच वर्षकी अवस्थासे ही उन्होंने अपनी ऋकशाखाका सम्पूर्ण अभ्यास किया; साथ ही अन्य शास्त्रोंका भी अध्ययन प्रारम्भ किया ।

बाल्यकालसे ही तेजस्वी तथा मेधावी बालकसे जो भी विद्वान् बातें करता, वह प्रभावित हो जाता था । उसी समय आन्ध्रप्रदेशके नारायण पेठके निकटवर्ती लोकापल्ली ग्रामके निवासी अशेष शास्त्रोंके मूर्धन्यपण्डित श्रीनृसिंहाध्वरि प्रसङ्गवश श्रीगम्भीररायके घर पधारे । उनका उचित स्वागत-सत्कार किया गया । श्रीनृसिंहाध्वरिजीने बालककी योग्यता एवं लक्षण देखकर पिताको अपने पास अध्ययनार्थ भेजनेका परामर्श दिया । पिताने भी बड़ी प्रसन्नतासे पुत्रको योग्य गुरुके पास भेज दिया ।

गुरुके घरमें रहकर बालकने विधिवत् समस्त विद्याओंका अध्ययन किया । श्रीभास्कररायजी अपने ग्रन्थोंमें लिखते हैं—

'विद्याष्टादशकस्य मर्मविदभूद्यः श्रीनृसिंहाद् गुरोः ।'

ये अष्टादश विद्याओंके पारगामी पण्डित हुए । इन्हीं श्रीनृसिंहाध्वरि गुरुसे इन्हें उपासनामें प्रवेश तथा प्रगति प्राप्त हुई ।

श्रीनृसिंहाध्वरिजीके पुत्र महामीमांसक श्रीस्वामी शास्त्रीजी थे । इन दोनों गुरु-बन्धुओंने मिलकर आन्ध्रप्रदेशके राजा मल्लिकार्जुनके इच्छानुसार 'पूर्वमीमांसावादकुतूहलम्'

* श्रीभास्कररायकी विस्तृत जीवनी 'भास्कर-विलास'में, आडयारसे प्रकाशित 'वरिवस्यारहस्यकी भूमिका' निर्णय-सागरसे प्रकाशित 'ललितासहस्रनाम-सौभाग्यभास्कर भाष्य'की भूमिकामें तथा 'कल्याण'के 'व्रत-अङ्क' आदिमें प्रकाशित है । जिज्ञासुजन उन्हें भी देख सकते हैं ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नामक ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीभास्कररायजीने अन्य आचार्योंसे भी अध्ययन किया, जिनमें रुक्मणा पण्डितसे छन्द और अलंकार-शास्त्र तथा गङ्गाधर वाजपेयी-से नव्यन्याय-शास्त्रके अध्ययनकी सूचना मिलती है। सत्रह-अठारह वर्षकी अवस्थातक श्रीभास्कररायने अनेक शास्त्रोंका अध्ययन पूरा कर लिया था, साथ ही आयुर्वेद, धनुर्वेद, गणितादि विद्याओंमें भी उनका पर्याप्त अभ्यास हो गया था।

श्रीगम्भीरराय अपने पुत्रको राजकार्यमें लगाना चाहते थे, परंतु किसी सिद्ध पुरुषके आदेशसे उन्होंने श्रीभास्कररायको अपने मनोऽनुकूल शास्त्राध्ययन तथा धर्मरक्षाकी प्रवृत्तिमें ही बढ़नेकी प्रेरणा दी। बाल्यकालमें ही इनके भविष्यकी घटनाओंका संकेत मिल गया था।

जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्यकी परम्परामें दो प्रकारकी शिष्य-प्रणाली थी, एक संन्यासीकी और दूसरी गृहस्थोंकी। इसी गृहस्थशिष्यपरम्परामें सम्प्रदायकी रक्षाके लिये श्रीभास्कररायने अवतार ग्रहण किया था।

आचार्य शंकरका जीवनकाल अल्प था। उनका अधिकांश समय प्रतिवादियोंके अज्ञान-शमन एवं वैदिक धर्मके संस्थापनमें ही बीता। आचार्यके दो प्रियकार्य अवशिष्ट थे एक शिव और दूसरा शक्तिकी उपासनाका दृढ़तासे प्रतिपादन। जिसमें प्रथम कार्य दक्षिणभारतके स्वनाम-धन्य श्रीअप्पय्य दीक्षितजीने किया और दूसरा कार्य श्रीभास्कररायजीने।

श्रीनृसिंहाध्वरिने श्रीभास्करको उस समयके सर्वश्रेष्ठ श्रीविद्योपासक तथा अविच्छिन्न शांकर परम्पराके प्रतिनिधि नागरद्विज, आहिताग्नि सूर्यपुर(सूरत)-निवासी पण्डित श्रीशिवदत्तजी शुक्लके पास इस आदेशके साथ भेजा कि गुरुको प्रसन्न कर उनसे अभीष्ट विद्या प्राप्त करो।

श्रीशिवदत्तजी शुक्ल परम तपस्वी थे। श्रीभास्कर राय सूरत गये और एक साधारण सेवक या विद्यार्थीके रूपमें शुक्लजीकी सेवामें रहने लगे। उस समय वल्लभसम्प्रदायके कोई तत्कालीन आचार्य वहाँ आये थे और जोर-शोरके साथ शांकरमतका खण्डन कर रहे थे—यह बात स्थानीय पण्डितोंने श्रीशिवदत्तजी शुक्लसे कही एवं उनसे सभामें चलनेका आग्रह किया। श्रीशिवदत्तजी शुक्ल पर्याप्त वृद्ध हो गये थे, अतः उनका वहाँ जाना सम्भव न था। उसी समय श्रीभास्कररायने सभामें जानेके लिये तैयार होकर गुरुजीसे आज्ञा माँगी। इनकी बातसे गुरुजीको वास्तविक स्थिति ज्ञात हुई और उन्होंने प्रसन्नतासे उन्हें आशीर्वाद दिया।

उस सभामें श्रीभास्कररायने शांकरमतकी विजयपताका फहरायी और वल्लभाचार्य-मतके वे आचार्य पराजित हुए। इस घटनाके फलस्वरूप अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीशिवदत्तजी शुक्लने श्रीभास्कररायजीको सर्वोच्च दीक्षाएँ देकर कृतार्थ किया। इस घटनाका उल्लेख जगन्नाथ शुक्लके 'भास्करविलास' काव्यमें इस प्रकार है—

शिवदत्तशुक्लचरणासादितपूर्णाभिषेकसाम्राज्यः ।
गुर्जरदेशे विदधे जर्जरस्थैर्यं स वल्लभाचार्यम् ॥

इसी प्रकार मध्व-सम्प्रदायके एक आचार्यने भी उन्हें शास्त्रार्थके लिये चुनौती दी थी। श्रीभास्कररायजी देशस्थ ब्राह्मण थे। देशस्थ और कर्नाटकोंमें विवाह-सम्बन्ध होता आया है। श्रीभास्कररायजीने शर्त रखी—'जो पक्ष हारेगा, वह दूसरे पक्षको अपनी कन्या प्रदान करेगा।' तदनुसार शास्त्रार्थमें पराजित होकर मध्वाचार्यने अपने भाईकी पुत्रीका विवाह श्रीभास्कररायके साथ कराया। भास्कर-विलासमें इसका उल्लेख इस प्रकार है—

वादे भास्करिणं माध्वं व्याधूयामुष्य बन्धुजाम् ।
पार्वतीं व्यवहत् कीर्त्या सभं सत्यप्रतिश्रवः ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी प्रकार वाराणसीमें भी पण्डितोंने इनकी परीक्षा लेनेका प्रयास किया था, यह बात प्रसिद्ध है। पण्डितोंने चतुःषष्टियोगिनी-चरित्रकी जिज्ञासा की, जिसका तत्काल उत्तर श्रीभास्कररायके समीपवर्ती अदृश्य देवताने दिया था। इनके जीवनकी घटनाएँ अत्यन्त चमत्कारी एवं महत्त्वपूर्ण तथा अविश्वसनीय-जैसी हैं, तथापि अनेकोंके सबल प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं।

आचार्य शंकरकी तरह श्रीभास्करराय भी सम्पूर्ण देशमें बार-बार पर्यटन करते रहे। सत्सम्प्रदायकी रक्षा, पाखण्ड तथा नास्तिकवादका खण्डन, वैदिक धर्मकी प्रतिष्ठा——ये ही उनके जीवनके लक्ष्य थे। विशेषरूपसे शक्तिकी उपासनाका महत्त्व, वेद और आगमोंका समन्वय, मीमांसाशास्त्रीय पद्धतिके अनुसार तन्त्र-ग्रन्थोंकी व्याख्या, अनेक देवस्थानोंका जीर्णोद्धार आदि उनके जीवनके महत्त्वपूर्ण कार्य रहे हैं। इन्होंने अनेक श्रौत-याग भी सम्पन्न किये थे। 'गणेशसहस्रनाम'के खद्योत-भाष्यमें काशीमें त्रिलोचनघाटके समीप कहीं एक यज्ञ करनेका उल्लेख है——

गम्भीरबुधयज्वनस्तनुभवोऽधिवाराणसि
त्रिलोचनपदानुगः कृतमखोऽग्निचिद्भास्करः॥

इसी प्रकार इन्होंने वामकेश्वर-तन्त्रान्तर्गत नित्याषोडशिकार्णवकी 'सेतुबन्ध'-टीकाकी रचना गोवा प्रदेशमें 'सप्तकोटीश्वर' शिवके समीप की थी। इन्होंने अपनी कुलदेवता 'चन्द्रकला' देवीका मन्दिर श्रीचक्राकार बनवाया। यह स्थान आन्ध्रप्रदेशमें सन्नतिक्षेत्रमें है। 'तंजौर' के समीप ही भास्करपुर नामक अग्रहारमें* उनकी पत्नीने भास्करेश्वर शिव और पार्वतीकी स्थापना की थी, जिसका जीर्णोद्धार काञ्चीकामकोटिपीठके श्रद्धेय शंकराचार्य श्रीचन्द्रशेखर सरस्वतीजीके आदेशसे भक्तोंने किया है। काशीमें अन्नपूर्णा-मन्दिरके एक कोनेमें 'चक्रेश्वर' शिवकी स्थापना भी इनके द्वारा हुई है। प्रसिद्ध है कि इनकी यात्रामें भी अध्ययन-अध्यापन तथा अग्निहोत्रकी इष्टियाँ चलती रहती थीं। श्रीजगदम्बाकी कृपासे वैभवकी कमी नहीं थी, अन्न-सत्र-समर्पण आदि सर्वदा चलता रहता था।

'तत्त्वभास्कर' ग्रन्थमें सूर्योपासनाके सम्बन्धमें बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री संकलित है। उसका भी एक इतिहास है। राजा चन्द्रसेन जाधव नामका इनका एक शिष्य था, जो भोंसले राजाओंका सेनापति था। उसके पुत्रके असाध्य रोगको नष्ट करनेके लिये सूर्यकी विधिवत् आराधना की गयी थी, वह ग्रन्थ उसी प्रसङ्गमें लिखा गया था, जो अभी बड़ौदासे प्रकाशित हुआ है। इनकी बहुमुखी सर्वशास्त्रावगाहिनी बुद्धि एवं व्याख्याका वैदुष्य देखकर आश्चर्य होता है। जिस स्थलपर जिस शास्त्रका प्रसङ्ग आता है, उस विषयका वे पूर्ण तथा सप्रमाण विवेचन करते हैं।

श्रीभास्कररायकी ग्रन्थ-लेखन-शैली विलक्षण थी। इनकी रचनाओंमें सहस्रों श्रेष्ठ ग्रन्थोंका उल्लेख प्राप्त होता है। फिर भी मीमांसाशास्त्र उनका प्रधान विषय रहा था। इन्होंने तन्त्र-ग्रन्थोंकी व्याख्यामें उसी शैलीका प्रयोग किया है। इनके शिष्य जगन्नाथ शुक्ल (तंजौर-राज्यके सभा-पण्डित) ने अपने 'भास्कर-विलास' काव्यमें इनके द्वारा विरचित चालीस ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। इनमें अबतक लगभग पंद्रह ही मुद्रित हुए हैं, पर वे भी सर्वसुलभ नहीं हैं। जैमिनि-सूत्रके संकर्षकाण्डकी व्याख्या भी इनके द्वारा लिखी गयी है। सभी ग्रन्थ शास्त्रशैलीमें लिखे गये हैं। वेदान्तके 'चण्ड भास्कर' अन्तर्गत, न्याय-शास्त्रमें 'न्यायमण्डन' और मीमांसामें 'भाट्टचन्द्रोदय' आदि इनके अनेक ग्रन्थ हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें मुख्यरूपसे 'सेतुबन्ध' (नित्याषोडशिकार्णव-व्याख्या) एवं 'श्रीललितासहस्रनाम'-

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

* अग्रहार—राजाओंद्वारा ब्राह्मणोंको जीवन-निर्वाहार्थ दिया गया भाग आदि।

का 'सौभाग्य-भास्कर भाष्य' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन सम्पूर्ण तान्त्रिक सिद्धान्तोंका प्रौढ़ विवेचन ग्रन्थोंमें प्राप्य है।

चिन्तन और सिद्धान्त

अब श्रीभास्करराय की विचारधारा एवं सिद्धान्तोंका संक्षेपमें परिचय प्रस्तुत है। 'आप्तवाक्य' रूपसे शब्द-प्रमाणको शास्त्रकारोंने माना है।

अष्टादशानामेतासां विद्यानां भिन्नवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता कविः साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः॥

——आदि प्राचीन वचनोंके अनुसार सम्पूर्ण जगत्के आप्त भगवान् परमशिव हैं। उन्होंने अधिकारिभेदसे सभी विद्याओंका उपदेश किया। अतः सभी विद्याएँ यथास्थान प्रमाणभूत हैं। भगवान् परम कारुणिक हैं। विविध कर्म-परिपाकके अनुसार चित्तवृत्तिको लेकर असंख्य जीव संसारमें आते हैं, उन सभीका उद्धार करनेके लिये परस्पर विलक्षण दिखायी पड़नेवाली विद्याओंकी सृष्टि होती है। किंतु अन्ततः सभी विद्याओंका लक्ष्य परमपुरुषार्थ ही होता है, शास्त्रोंमें अधिकारि-भेदसे व्यवस्था है। वैदिक धर्ममें आस्था रखनेवालोंमें भी वर्ण-भेद, आश्रम-भेद एवं अवस्था-भेदसे धर्माचरण अनेक प्रकारका होता है। सोपानारोहण-न्यायसे (सीढ़ी चढ़नेके क्रमसे) जीव भगवत्कृपानुसार गन्तव्य मार्गकी ओर अग्रसर होता है। अक्षराभ्याससे लेकर नाना शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करनेके बाद भी **'धर्ममेवाचरेत्प्राज्ञः'** आदि वचन पुरुषको कर्मकाण्डकी ओर प्रवृत्त करते हैं। इसके लिये पूर्वमीमांसाका अध्ययन एवं कर्मकाण्डका सम्पादन आवश्यक होता है, किंतु यहाँतककी सभी भूमिकाएँ अज्ञान-भूमिकाएँ ही कही जाती हैं। इसीलिये **'नास्त्यकृतः कृतेन'** इत्यादि श्रुति-वचन कर्मकी हेयता बताकर पुरुषको आगे बढ़नेकी राह दिखाते हैं। इसके आगे **'तदविज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्'** आदि उपनिषदोंके वाक्य आत्मविद्याके क्षेत्रमें पुरुषको प्रवेश करनेकी सूचना देते हैं। ब्रह्मज्ञानकी मुख्य भूमिकाएँ सात हैं, यों सामान्यतया वे असंख्य हैं।

भगवान् वसिष्ठने अपने शास्त्र 'योगवासिष्ठ'में जिन सात भूमिकाओंका निर्देश किया है, उनके नाम हैं—विविदिषा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभाविनी एवं तुर्यगा। इनका विस्तृत परिचय योगवासिष्ठमें उपवर्णित है। इन ज्ञान-भूमिकाओंके लिये उपनिषत्काण्ड एवं उत्तरमीमांसाका अध्ययन आवश्यक है।

ब्रह्मज्ञान भी दो प्रकारका है—शाब्द और केवल अपरोक्षानुभवरूप। वेदान्तोंका शब्दपाण्डित्य अर्जित करने और उसके उपदेशसे कोई लाभ नहीं है। अतः श्रुति उसकी भी निन्दा करती है—**'पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्'**-आदि; क्योंकि शास्त्रकारोंका वचन है—

शास्त्रदृष्टिर्गुरोर्वाक्यं तृतीयः स्वात्मनिश्चयः।
अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दो बोधो नहि क्षमः॥

वसिष्ठके द्वारा निर्दिष्ट ज्ञान-भूमिकाओंमें द्वितीय और तृतीय भूमिकाके बीचमें 'भक्ति' नामकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उसके लिये भक्ति-शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये। भक्ति पञ्चमी भूमिकातक चलती है, षष्ठ भूमिकामें अपरोक्षानुभव है। उससे लगी हुई सप्तमी भूमिकामें वैदेहकैवल्यकी स्थिति है। शास्त्रोंमें जो **'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्'** कहा है, वहाँ ज्ञान-शब्दका अर्थ अनुभव ही है।

अब यहाँ एक शङ्का हो सकती है कि विभिन्न शास्त्रकारों, महर्षियोंने अपने शास्त्रका अन्तिम प्रयोजन 'मोक्ष' कहा है तो क्या वे मिथ्याभाषी होंगे ? बात ऐसी नहीं है। पुरुषार्थ-प्राप्तिमें विलम्बकी आशङ्का न हो, इसलिये उन्होंने अपनी विद्याको मोक्षदायक कहा। वस्तुतः सभी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विधाएँ मोक्षकी मार्गदर्शिका हैं। पुरुषकी प्रवृत्ति बनी रहे, वह आगे बढ़ता रहे, इस शुभचिन्तनके कारण शास्त्रकारोंका कथन निर्दोष ही है। अतः सभी विधाप्रवर्तक आचार्योंकी प्रामाणिकता सर्वमान्य है। इस प्रकार अनेक भूमिकाओंसे आगे बढ़नेपर शब्द-ज्ञानकी सीमा पार करनेवाले पुरुषकी संसारकी ओर देखनेकी प्रवृत्ति बदल जाती है। वह न तो सर्वथा विरक्त होता है और न आसक्त ही—

न निर्विण्णो न चासक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः।

अब पुरुष भक्तिमार्गका अधिकारी बना। भक्ति भी दो प्रकारकी होती है—गौणी और परा। सगुण ब्रह्मरूपका ध्यान, अर्चन, जप, नामकीर्तन आदि व्यवसाय गौणी भक्तिका फल है। परा भक्ति गौणी भक्तिसे प्राप्त होनेवाले ध्येयके प्रति अनुराग है। **'सा परानुरक्तिरीश्वरे'** शाण्डिल्य भक्ति-सूत्रकी यह उक्ति प्रसिद्ध है। इनमें भी साधककी स्थितिके अनुसार अनेक सूक्ष्म भूमिकाएँ हो सकती हैं।

उदाहरणके लिये **'योषामग्निं ध्यायीत'** आदि उपनिषदोंमें भावना-सिद्धिका प्रकार बताया गया है। दूसरा प्रकार **'मनो ब्रह्मेत्युपासीत'** यह उपासनाका प्रकार है। तीसरा प्रकार है ईश्वरोपासना। ईश्वरके भी नाना रूप होनेके कारण सूर्य, गणेश, विष्णु, रुद्र, परशिव आदि रूपोंसे विभिन्न उपासनाएँ हैं। उन देवताओंकी शक्तियाँ भी छाया, वल्लभा, लक्ष्मी आदि नाना रूपोंमें अलग-अलग प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त क्रमसे अनेक जन्मोंमें तत्तद्भूमिकाओंका अतिक्रमण करनेवाले पुरुषका भगवती त्रिपुरसुन्दरीके विषयमें गौणी भक्तिका उदय होता है। गौणी भक्तिका पूर्ण समय बितानेके पश्चात् परा भक्तिका उन्मेष हो जाता है। आगमोंका कथन है—

शैववैष्णवदौर्गार्कगाणपत्यादिकैः क्रमात्।
मन्त्रैर्विशुद्धचित्तस्य कौलज्ञानं प्रकाशते॥

भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीकी गौणी भक्ति-सम्बन्धी इतिकर्तव्यताके निरूपणके लिये सुन्दरीतापिनी-पञ्चक, भावनोपनिषद्, कौलोपनिषद्, गुह्योपनिषद्, महोपनिषद्, आदि वेदशिरोभाग प्रवृत्त हुए।

जिस प्रकार वेदोंमें पूर्वकाण्ड (मीमांसाशास्त्र) के शेष या अङ्गभूत आश्वलायनादि सूत्र और मन्वादि स्मृतियाँ हैं, उसी प्रकार उपनिषत्-काण्डके शेष या अङ्ग परशुराम-कल्पसूत्रादि ग्रन्थ तथा यामलादि तन्त्र प्रवृत्त हुए। पुराणोंकी अङ्गता दोनों काण्डोंके प्रति है। इस प्रकार स्मृति, तन्त्र और पुराणोंकी प्रामाणिकता वेदमूलक ही है। तन्त्रोंमें यदि कहीं-कहीं वेदविरुद्धांश है तो उसका 'विरोधाधिकरण' न्यायसे उतना ही अंश अप्रमाण होगा, सभी नहीं।

कुछ तन्त्र ऐसे हैं, जो सर्वथा वेदमार्गसे च्युत पुरुषोंके पुनः वेदमार्गमें प्रवेशार्थ साधन हैं, जैसे कुछ पाशुपत-विशेष और पाञ्चरात्र-विशेष आदि। ऐसे 'पाशुपत' मतका खण्डन आचार्यने ब्रह्मसूत्र-भाष्य **'पत्युरसामञ्जस्यात्'** इत्यादि स्थलोंमें किया है। इस प्रकार आचार्य भास्करने 'सेतुबन्ध' टीकाके प्रारम्भमें शास्त्रीय भूमिकाओंका क्रम विस्तारके साथ निरूपित किया है।

शक्तिकी प्रधानताके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए आचार्यने परिणामवादको माना है। उनका मत है— **'चिच्छक्तिः परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यते'** इस संक्षेप-शारीरकके वचनानुसार सम्पूर्ण विश्व चित्-शक्तिका ही परिणाम है। यद्यपि शंकराचार्यने ब्रह्मसूत्रकी व्याख्यामें विवर्तवादका अनुसरण किया है, फिर भी वस्तुतः उन्हें भी परिणामवाद ही अभीष्ट था। 'सौन्दर्यलहरी' में स्वयं आचार्यपादका कथन है—**'त्वयि परिणतायां नहि परम्'** स्वयं महर्षि व्यासने भी **'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'** (ब्र० सू० १।४।२३) इस अधिकरणमें एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी सिद्धि और वहाँ दिये गये मृद्घट, नख-

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निरुक्तनादि दृष्टान्त तथा 'बहु स्यां प्रजायेय' (तै०उ० २ । ७) इत्यादिसे परिणामको ही पुष्ट किया है और स्वयं 'आत्मकृतेः परिणामात्' इस प्रत्यक्ष सूत्रद्वारा प्रमाणित किया है। आचार्य भास्करके अनुसार भेद ही मिथ्या है, प्रपञ्च मिथ्या नहीं है। परशिवरूप ब्रह्म स्वभावतः अनन्त शक्तियोंसे भरा हुआ है—'सर्वशक्तिः परं ब्रह्म नित्यमापूर्णमव्ययम्' आदि शास्त्रीय वचनोंका भी यही आशय है। ब्रह्ममें रहनेवाला शक्तिपुञ्ज ही भगवती परा भट्टारिका है, शक्ति और शक्तिमान्का अभेद है। अतः अद्वैतवादकी प्रतिष्ठामें बाधा नहीं आती। वेदान्तवादियोंकी माया जड है, मायाको ही जगत्का परिणामी उपादान माननेसे जगत् भी मिथ्या है। ब्रह्मको केवल विवर्तोपादान माना है।

परिणामवादी तान्त्रिकोंकी दृष्टिमें ब्रह्मकी चिच्छक्ति, जिसे वेदान्ती भी मानता है, अनन्तरूपा होनेके कारण माया कही जाती है—

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।'
'माया च अविद्या च स्वयमेव भवति'

—आदि श्रुतियाँ भी यही कहती हैं। सारा प्रपञ्च उसीका परिणाम होनेसे चिद्रूप ही है। इससे पूर्वसम्मत अद्वैत-वादका कोई विरोध नहीं होता। प्रपञ्च और ब्रह्मका भेद ही मिथ्या है। यह माननेसे सारी शङ्काएँ समाप्त हो जाती हैं। शिवागमोंमें भी 'माया' परमेश्वरकी स्वातन्त्र्य शक्ति कही गयी है—

देवी मायाशक्तिः स्वात्मावरणं शिवस्यैतत्।

इस प्रकार आचार्यने वेद और आगमोंका परस्पर समन्वय दिखाते हुए प्रगल्भ भाषामें अनेक स्थानोंपर विवेचन किया है। इनकी ललितासहस्रनाम-व्याख्याको यदि शक्ति-उपासनाका विश्वकोश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। मुख्य शक्तिपीठोंका सप्रमाण परिचय, अनेक मन्त्र-विद्याओंका उद्धार, नाना शास्त्रोंकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म ग्रन्थियोंका उन्मीलन उसमें पद-पदपर उपलब्ध है। गणेशसहस्रनामका 'खद्योत' भाष्यनामकी व्याख्या आकारमें संक्षिप्त होनेपर भी महत्त्वपूर्ण सूचनाओंसे भरी है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रन्थ अपने कलेवरमें उस विषयकी सम्पूर्ण अभिव्यक्तिकी क्षमतासे सम्पन्न है। सप्तशतीकी गुप्तवती-टीका भी अन्य सभी टीकाओंसे विलक्षण तथा रहस्यार्थको प्रकाशित करती है। लोककरुणासे आचार्यने बहुत लिखा, किंतु इस आदेशके साथ कि 'गुरुकी कृपासे ही विद्या प्राप्त करनी चाहिये। गुरु-सम्प्रदायके बिना इस विद्यामें प्रवेश करना साहस नहीं, दुःसाहस है। 'वरिवस्यारहस्य' के अन्तमें वे लिखते हैं—

गुरुचरणैकसहायो भास्कररायो जगन्मातुः।
वरिवस्यातिरहस्यं वीरनमस्यं प्रजग्रन्थ॥

शास्त्र, सम्प्रदाय, सदाचारकी रक्षा एवं परदेवताकी उपासनाको जीवनमें सर्वत्र प्रतिष्ठापित करते हुए आचार्यश्रीने भारतीय संस्कृतिको उन्नतिके शिखरपर पहुँचाया। अन्तिम समयमें वे 'मध्यार्जुन' शिवक्षेत्रमें निवास करते थे। वहीं कावेरी-तटपर समाधिद्वारा उन्होंने शिवतत्त्वमें प्रवेश किया।

श्रीभास्करराय शास्त्रों एवं तन्त्रोंके अपने समयके अद्वितीय आचार्य थे। अनेक विद्वान् इनके दीक्षित शिष्य हुए। अनेक राजाओंने इनका महान् सम्मान किया। ये स्वयं जहाँ भी जाते थे, अपने व्ययसे बहुत-से विद्वान् ब्राह्मणोंका पूजन, स्थानीय देवताओंका आराधन तथा यज्ञ-यागादि किया करते थे। सहस्रों जिज्ञासुजन इनके पास सदा आते ही रहते थे।

कहते हैं, ये मार्गमें पालकीपर बैठकर चलते हुए साथ चलनेवाले विद्वानोंसे निरन्तर शास्त्र-चर्चा किया करते थे। इन्होंने अनेक राजाओंको यवन-धर्ममें जानेसे बचाया। उस समय कामाख्याकी यात्रा दुर्गम एवं भयप्रद थी। उग्र तान्त्रिकोंके डरसे वहाँ कोई जा नहीं

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाता था। आचार्य जब गौहाटीतक गये, तब पालकी ढोनेवाले कहारोंने आगे जानेसे अस्वीकार कर दिया। तब ये स्वयं अकेले ही कामाख्या-मन्दिरतक गये। वहाँके प्रचण्ड तान्त्रिक इनके सामने विनयावनत हो इन्हें आदरपूर्वक ले गये तथा आचार्य भगवतीका पूजन-अर्चन करके सकुशल वापस आये। पश्चात् कामरूप—(वर्तमान असम)-को दूरसे ही देखकर ये वापस लौट आये; क्योंकि नग्न स्त्री-पुरुषोंके देशमें जाना मर्यादाके विरुद्ध है। इन बातोंका संकेत इन्होंने अपने 'भास्कर-विलास' काव्यमें किया है।

श्रीभास्कररायके शिष्योंमें वसुमती (महाराष्ट्र) में उमापत्यानन्दनाथ एवं शुकानन्दनाथ प्रभृति हुए। जिनके स्थान आज भी वर्तमान हैं। तंजौरके भोंसले राजाओंके सभा-पण्डित जगन्नाथ शुक्ल (उमानन्दनाथ) इनके दीक्षित शिष्य थे। इनका ग्रन्थ 'नित्योत्सव' प्रसिद्ध है। जो दक्षिण एवं उत्तर भारतके विद्वानोंके द्वारा उपासना-विषयमें प्रामाणिक माना जाता है। आचार्यकी शिष्य-परम्परा दक्षिणभारतमें महाराष्ट्र तथा अन्यत्र भी वर्तमान है। इसकी शाखा वाराणसीतक फैली है। 'घनश्याम शास्त्री जडे' नामके विद्वान् श्रीभास्कररायके प्रिय शिष्य थे। उन्हें बड़ौदा-नरेशने जागीर देकर अपने राज्यमें रखा था। इस वंशकी शाखा काशीमें भी है।

प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीरघुनाथ शास्त्री गोडबोलेजी वसुमती-नांदेडकी परम्परासे सम्बद्ध थे। इनके द्वारा अपने जीवनकालमें श्रीभास्कररायकी परम्परा पुष्पित और फलित हुई। फिर भी ये लोकप्रसिद्धिसे पराङ्मुख थे। म० म० ख० गोपीनाथ कविराजजीके द्वारा अनुरोध करनेपर इन्होंने अनेक शिष्योंको मार्गप्रदर्शनकर अनुगृहीत किया। लेखकको उनके चरणोंमें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अन्तमें श्रीभास्कररायके विषयमें उनके शिष्य **'नित्योत्सव'**-कारका एक श्लोक दिया जा रहा है, जिससे उनके व्यक्तित्वकी कुछ झलक मिलती है—

यस्याद्यग्रो नास्ति भूमण्डलांशो
यस्यादासो विद्यते न क्षितीशः।
यस्याज्ञातं नैव शास्त्रं किमन्यैः
यस्याकारः सा परा शक्तिरेव॥

नवरत्नमाला

ओंकारपञ्जरशुकीमुपनिषदुद्यानकेलिकलकण्ठीम्।
आगमविपिनमयूरीमार्यामन्तर्विभावये गौरीम्॥
दयमानदीर्घनयनां देशिकरूपेण दर्शिताभ्युदयाम्।
वामकुचनिहितवीणां वरदां संगीतमातृकां वन्दे॥
श्यामलिमसौकुमार्यामानदामन्दसम्पदुन्मेषाम्।
तरुणिमकरुणापूरां मदजलकल्लोललोचनां वन्दे॥
नखमुखमुखरितवीणानादरसास्वादनवनवोल्लासम्।
मुखमम्ब मोदयतु मे मुक्ताताटङ्कमुग्धहसितं ते॥
सरिगमपधनिरतां तां वीणासंक्रान्तकान्तहस्तान्ताम्।
शान्तां मृदुलस्वान्तां कुचभरतान्तां नमामि शिवकान्ताम्॥
अवदुतटघटितचूलीपालीं तालीपलाशताटङ्काम्।
वीणावादनवेलाकम्पितशिरसं नमामि मातङ्गीम्॥
वीणारवानुषङ्गं विकचमदामोदमाधुरीभृङ्गम्।
करुणापूरितरङ्गं कलये मतङ्गकन्यकापाङ्गम्॥
मणिभङ्गमेचकाङ्गीं मातङ्गीं नौमि सिद्धमातङ्गीम्।
यौवनवनसारङ्गीं संगीताम्भोरुहानुभवभृङ्गीम्॥
मेचकमासेचनकं मिथ्याद्यग्रान्तमध्यभागं तम्।
मातस्तव स्वरूपं मङ्गलसंगीतसौरभं मन्ये॥

॥ इति नवरत्नमाला समाप्ता ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्ति-साधना

'अजपा' गायत्री-शक्ति-उपासना

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती 'टेम्बे स्वामी')

जिसने हमें सर्वकार्यक्षम यह मानव-देह प्रदान किया और सोचने-समझनेकी सद्‌बुद्धि भी प्रदान की, उसीने जन्म-मरणके चक्रमें फँसानेवाली और विविध आपदाओंमें ग्रसित करनेवाली मायाकी लपेटसे बचनेके लिये एक सरलतम साधन भी प्रदान कर दिया है, वह है 'अजपा' मन्त्रशक्तिका जप। इसका 'अजपा' नाम ही इसलिये पड़ा है कि इसे जपना नहीं पड़ता, अपितु हम नित्य जो श्वासोच्छ्वास लेते हैं, उसीसे यह जप बन जाता है—**'न जप्यते नोच्चार्यते, श्वासप्रश्वासयोर्गमनागमनाभ्यां सम्पद्यते इति अजपा।'** ध्यानबिन्दूपनिषद् (६२-६३) में कहा है—

शतानि षड् दिवारात्रं सहस्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥

अर्थात् मानव दिन-रात लिये जानेवाले इक्कीस हजार छः सौ श्वास-प्रश्वासोंमें 'हंसः-हंसः' सदैव जपता रहता है।

योगचूडामणि-उपनिषद् (३१) और ध्यानबिन्दूपनिषद् (६१–७३) में लिखा है कि मनुष्य जब साँस लेता है उस समय वह 'सः' और साँस छोड़ते समय 'ह' की आवाज किया करता है। (गाढ़ निद्रामें सोते समय यह ध्वनि जोरसे उठती सुनी जा सकती है।) यह अजपा गायत्री योगियोंके लिये सदैव मोक्षदा है—

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हं स हं सेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा॥

योगचूडामणि-उपनिषद् (३४-३५) और ध्यानबिन्दूपनिषद् (६४-६५) में इस अजपा-जपकी फलश्रुतिमें बताया गया है कि यह सर्वोत्तम विद्या और अनुत्तम जप है। इससे बढ़कर पुण्यकार्य न है और न हो सकता है—

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति॥

इस सम्बन्धमें योगबीज (१३५) और योगशिखोपनिषद् (१। १३२-३३) में एक विशेष बात बतायी गयी है कि सर्वप्रथम इस मन्त्रकी गुरुसे दीक्षा लेनी चाहिये, तदनन्तर जप करना चाहिये। इसका कारण यह बताया गया है कि वास्तवमें मन्त्रयोग **'सोऽहम्-सोऽहम्'** ही कहा गया है, किंतु सुषुम्णामें विपरीत अर्थात् **'हं सः हं सः'** ऐसा जप हुआ करता है। **'सोऽहम्'** का अर्थ है, 'वही परब्रह्म परमात्मा मैं हूँ'। फिर भी 'ध्यानबिन्दूपनिषद्' (६४)में कहा है कि इस गायत्रीके संकल्पमात्रसे मानव पापमुक्त हो जाता है—

अस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते।

इससे स्पष्ट है कि गुरुसे एतदर्थ प्रथम दीक्षा अनिवार्य नहीं है। यदि ले ली जाती है तो जप वीर्यवत्तर

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो जाता है । इसीसे यह भी प्रतीत होता है कि साधक 'हं सः, हं सः' कहे या 'सोऽहम्, सोऽहम्', उसे फल समान ही मिलता है । एक बात ध्यान देनेकी है कि 'हं सः, हं सः' कहनेपर द्वितीय बार यह 'सोऽहम्' (हं सः (सो) हं सः) सहज ही हो जाता है ।

अब इस अजपा गायत्री-उपासनाका प्रकार देखिये । किसी भी सत्कार्यके लिये स्नान सबसे प्राथमिक क्रिया है, किंतु अजपा गायत्रीके अनुष्ठानार्थ आप मानस स्नान भी करके उसे जप सकते हैं; क्योंकि पहले सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक किये गये अजपा-जपका समर्पण और अग्रिम वैसे ही जपका संकल्प करनेमें मानस-तीर्थमें स्नान ही सुविधाजनक होता है । मानसतीर्थमें स्नान शास्त्रोंमें प्रशस्ततम बताया गया है । यथा—

इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णाख्या सरस्वती ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मुक्तो न संशयः ॥

'इडा नाडी साक्षात् भगवती गङ्गा है और पिङ्गला है यमुना नदी । इन दोनोंके मध्य रहनेवाली सुषुम्णा नाडी सरस्वती है । जो इन तीनों नदियोंकी संगमस्थली मानसतीर्थमें स्नान करता है, वह निःसंदेह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है ।'

अतएव प्रातःकाल उठकर हाथ-पैर धोकर कुल्ला करके रात्रिके पहने हुए वस्त्र बदल देना चाहिये । फिर आसनपर बैठकर आचमन-प्राणायाम करनेके पश्चात् भगवान्का ध्यान कर—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

—इस मन्त्रसे सभी अङ्गोंपर जलका प्रोक्षण करना चाहिये । तदनन्तर हाथमें जल लेकर अजपा-मन्त्रका संकल्प करनेका विधान है—

'अद्येत्यादि………संवत्सरे………मासि ……पक्षे………तिथौ………वासरे………गोत्रः ……नामाहं गतदिने सूर्योदयादारभ्य अद्य सूर्योदयपर्यन्तं जाग्रदाद्यवस्थासु श्वासोच्छ्वासजात-षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकमजपाजपं-मूलाधारादिचक्रगतगणपत्यादिदेवतारूपिश्रीपरमेश्वराय निवेदयामि ॐतत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।'

यह संकल्प पूरा करके हाथके जलको जलपात्रमें छोड़ देना चाहिये । पुनः आचमन, प्राणायामादि कर आज सूर्योदयसे आगामी सूर्योदयतक किये जानेवाले अजपा-जपका निम्नलिखित संकल्प करना चाहिये—

'अद्येत्यादि……नामाऽहम् अद्य सूर्योदयादारभ्य श्वस्तनसूर्योदयपर्यन्तं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याद्यवस्थासु श्वासोच्छ्वासरूपेण जायमानं षट्शताधिकैकविंशति-सहस्रसंख्याकमजपाजपं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं करिष्ये ।'

तदनन्तर सविनियोग अङ्गन्यास और करन्यास निम्नलिखित प्रकारसे करना चाहिये । पहले यह विनियोग बोलना चाहिये—

अस्य श्रीअजपागायत्रीमन्त्रस्य परमहंसऋषिः, परमात्मा देवता, अव्यक्तगायत्रीच्छन्दः, हं बीजम्, सः शक्तिः, सोऽहम् कीलकम् जपे विनियोगः ।

करन्यास

ॐ हं सां गणेशाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ हं सीं ब्रह्मणे तर्जनीभ्यां नमः । ॐ हं सूं विष्णवे मध्यमाभ्यां नमः । ॐ हं सैं शम्भवे अनामिकाभ्यां नमः । ॐ हं सौं जीवात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ हं सः परमात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यास

ॐ हं सां गणेशाय हृदयाय नमः । ॐ हं सीं ब्रह्मणे शिरसे स्वाहा । ॐ हं सूं विष्णवे शिखायै वषट् । ॐ हं सैं शम्भवे कवचाय हुम् । ॐ हं सौं जीवात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हं सः परमात्मने अस्त्राय फट् ।

तदनन्तर निम्नलिखित श्लोक पढ़कर ध्यान करना विहित है—

गमागमस्थं गमनादिशून्यं
चिद्रूपदीपं तिमिरान्धनाशम् ।
पश्यामि ते सर्वजनान्तरस्थं
नमामि हं सं परमात्मरूपम् ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदलदले द्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये (ड फ) कण्ठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि॥

'जिनका चित्स्वरूप दीपक गमागम (आवागमन) में स्थित, गमनादिसे शून्य, अन्धकारका विनाशक और सभी प्राणियोंके भीतर स्थित है, आपके उस परमात्मरूप 'हं, सं' को मैं देखता हूँ और उसे नमस्कार करता हूँ। जो आधार, लिङ्ग, नाभि, हृदय, तालुमूल, ललाट, द्विदल, षोडशदल, द्वादशदल, षडदल, चतुर्दल, वासान्त, बालमध्य और (ड फ) कण्ठसहित कण्ठदेशमें स्वरोंके तत्त्वार्थसे युक्त 'हं क्षं' के रूपमें सभी दलोंमें वर्तमान है, उस वर्णरूपको मैं नमस्कार करता हूँ।'

मानस-पूजा

ॐ लं पृथ्व्यात्मकं गन्धं परमेश्वराय परिकल्पयामि। ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परमेश्वराय परिकल्पयामि। ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परमेश्वराय परिकल्पयामि। ॐ रं तेजसात्मकं दीपं परमेश्वराय परिकल्पयामि। ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं परमेश्वराय परिकल्पयामि। ॐ सं सर्वात्मकं ताम्बूलादिं परमेश्वराय परिकल्पयामि।

अन्तमें यह कहकर जल छोड़ना चाहिये—

षट्शतं गणनाथाय ब्रह्मणे षट्सहस्रकम्।
विष्णवे षट्सहस्रं च षट्सहस्रं च शम्भवे॥
जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा।
परमात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत्॥

'मैं छः सौ जप-संख्या गणेशको, छः हजार ब्रह्माको, छः हजार विष्णुको, छः हजार शम्भुको, एक हजार जीवात्माको, एक हजार गुरुको तथा एक हजार परमात्माको निवेदित करता हूँ (ऐसा कहना चाहिये)।'

अजपाशक्ति-स्तुति

शिवोऽपि शक्तियुक्तश्चेत् प्रभुः कार्याय नान्यथा।
स्वमायया विनेशस्य परस्यानुभवात्मनः॥
न घटेतार्थसम्बन्धस्ततो माया परावरा।
यस्याः प्रभावं प्रवक्तुं ब्रह्माद्या अप्यलं बलम्॥
वैष्णवीयं महामाया सुरासुरमुनिस्तुता।
शय्यां देवमयीं कृत्वा शेतेऽसाविति गीयते॥
सर्वे देवाश्च मुनयो विपत्तिषु यां स्तुवन्ति हि।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुरेका सनातनी॥
विदुषोऽपि हठाच्चेतो महामोहाय यच्छति।
अभक्तानां बन्धहेतुर्भक्तानां मुक्तिदा च सा॥
सर्वेष्वपि हि भूतेषु चेतनेत्युच्यते ततः।
स्वात्मारामः शिवोऽप्यत्र रत्यर्थमनुधावति॥
माया चतुष्कपर्यासौ युवतिर्नित्यनूतना।
सुपेशा च धृतास्यादौ वस्तेऽस्य वयुनान्यपि॥
भक्तिश्रद्धाधृतिह्रीःश्रीर्धीर्मेधाद्यैश्च सत्सु या।
तृष्णालक्ष्म्याऽऽर्तिभीर्निद्रातन्द्रारूपैरसत्सु च॥
क्षणे क्षणे विमुह्यन्ति यशिनोऽप्यत्र योगिनः।
सैषानिर्वचनीयार्च्या या ह्यनादिरजा श्रुता॥

'यदि शिव भी शक्तिसे युक्त होते हैं तभी कार्य-सम्पादन करनेमें समर्थ होते हैं, अन्यथा नहीं। अपनी मायाके बिना ईशका दूसरेके साथ अनुभवात्मक अर्थ-सम्बन्ध घटित नहीं होता, इसीसे माया सर्वश्रेष्ठ है। जिसके प्रभावका वर्णन करनेमें ब्रह्मा आदिका भी बल पर्याप्त नहीं है। सुर-असुर और मुनियोंद्वारा स्तुत यह वैष्णवी महामाया देवीमयी शय्याका निर्माण करके शयन करती है—ऐसा कहा जाता है। सभी देवता और मुनिगण विपत्तिके समय जिसकी स्तुति करते हैं, वह अद्वितीय सनातनी शक्ति सृष्टि, स्थिति और संहारकी हेतु है। वह विद्वान्‌के भी चित्तको हठपूर्वक महामोहमें डाल देती है। वह भक्तोंके लिये मुक्तिदायिनी और अभक्तोंके लिये बन्धनकी कारणभूता है। इसी कारण वह सभी प्राणियोंमें 'चेतना' कही जाती है। स्वात्मा-राम शिव भी रतिके लिये इसीके पीछे दौड़ते हैं। यह माया नित्य नूतन युवती, चार कौड़ीवाली अर्थात् बलवती, सुन्दर पेशावाली है। यह आदिम ज्ञानियोंमें भी निवास करती है। यह सत्पुरुषोंमें भक्ति, श्रद्धा,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धृति, लज्जा, श्री, धी, मेधा आदि रूपसे और असत्पुरुषोंमें तृष्णा, दरिद्रता, आर्ति, भय, निद्रा और तन्द्रा आदि रूपोंसे निवास करती है। जितेन्द्रिय योगी भी समय-समयपर इसके विषयमें मोहित हो जाते हैं। जो अनादि और अजारूपसे कही जाती है, वही यह अनिर्वचनीय और पूज्य है।

मातृदेवी-उपासनाकी परिकल्पना

(डॉ० श्रीजनार्दनजी उपाध्याय, एम्० ए० (अंग्रेजी, हिंदी), पी-एच्० डी०)

भारतीय मनीषामें शक्ति-तत्त्वकी परिकल्पना अद्वितीय है। प्रारम्भमें परमशिव ही दो तत्त्वोंमें विभक्त होकर शिव और शक्तिरूपमें प्रकट हुए। शिवतत्त्व विधिरूप है और शक्तितत्त्व निषेधरूप। शिव-शक्तिरूप विधि-निषेधके स्पन्द-विस्पन्दसे ही समूचा दृश्यमान जगत् प्रतिभासित होता है। तान्त्रिक एवं औपनिषद दृष्टिमें यह पिण्डरूप मानव-देह विश्वव्यापी ब्रह्माण्डका ही प्रतिरूप है। अतः जभी पिण्डमें शिवतत्त्वका प्राधान्य होता है, तभी पुरुषरूपका प्रकटीकरण सहज है। पिण्डमें शक्तिका वैशिष्ट्य नारीरूपकी अभिव्यक्ति है। वस्तुतः सूक्ष्म-तत्त्व-विमर्शसे स्पष्ट है कि नर-नारीका सनातन स्वरूप हाड़-मांसका बना पिण्डमात्र नहीं है। वह तो विश्वव्यापी शिव-शक्तिका ही रूपायन है।

स्पष्टतया समस्त सचराचर जगत् आदिशक्ति मातृ-रूपका ही प्रपञ्च है। शक्तितत्त्व मातृरूपका और शिवतत्त्व पितृरूपका विधायक है—**'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।'** शक्तितत्त्व नारीरूप है। नारी निषेधरूपा है। निषेधरूपाका अर्थ है—अपनेको निःशेष भावसे दूसरोंके लिये उत्सर्ग कर देना। जहाँ भी अपनेको दूसरोंके लिये खपा देने, समर्पण, सेवा, उत्सर्ग करनेका भाव है, वहीं नारी-तत्त्व है। यही नारीका मातृरूप है। इसमें केवल दान है, प्रतिदानकी आकाङ्क्षा नहीं। इसमें उत्सर्ग-तत्त्व प्रमुख है।

माता वात्सल्यभावसे अपनेको पुरुषके लिये दलित द्राक्षाकी भाँति निचोड़कर रख देती है। वह केवल देना चाहती है। उसका धर्म है उत्सर्ग, उसका स्वभाव है समर्पण, उसका कर्म है सेवा और उसकी प्रकृति है निषेध।

प्राचीनकालसे ही मानव किसी-न-किसी रूपमें प्रकृति, धरती और उपजको माता मानकर देवी-रूपमें उपासना करता आ रहा है। प्राग्वैदिक कालमें मातृदेवीकी उपासनाका प्रशस्त रूप मिलता है। यद्यपि ऋग्वेदमें मातृदेवीकी पूजाकी प्रधानता नहीं है; फिर भी 'मातृदेवी' या 'महामाया'के लिये अदिति, पृथ्वीमाता, प्रकृति आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है। अदितिका जो रूप और गुण है, वह ब्राह्मण एवं पौराणिक कालमें वर्णित मातृदेवी-तुल्य है—

'नमो मात्रे पृथिव्यै, नमो मात्रे पृथिव्यै, इयं पृथ्वी वै माता ।'*

मोहनजोदड़ोमें प्राप्त मातृदेवीके अनेक मृण्मय खिलौने प्राप्त हुए हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओंने इन मूर्तियोंको मातृदेवीकी मूर्तियाँ स्वीकार की हैं तथा यह तथ्य निकाला है कि मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पामें मातृदेवीकी पूजाका प्रचलन था, पर वह पुराणका वर्णन भी बादका है।

* यजुर्वेद ९। १२, तैत्तिरीय-संहिता ३। ८। ९। १।

ऋग्वेदमें मातृदेवी या महामायाके लिये अदिति, प्रकृति, पृथ्वीमाता शब्द प्रयुक्त हैं—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥

(ऋग्वेद १। ८९। १०)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकृतिदेवीका मातृदेवीमें रूपान्तरण

मातृदेवीकी उपासनाका प्रारम्भ धरतीमाताकी पूजासे है। प्रकृतिद्वारा मानवका लालन-पालन होता रहा है। अतः वह उपकृत-भावसे प्रकृतिको माता मानकर उसकी उपासना करता है।

प्राचीन संस्कृतिके अन्य देशों फरात, टिगडिज, नील-सिन्धुनदीके तटवासियोंकी जीविका कृषिपर निर्भर थी। इसलिये स्वाभाविक है कि ये लोग पोषण करनेवाली खेतीकी देवी या धरतीमाताकी पूजा करते थे। उपजकी देवीका चित्रण बादकी भारतीय कलामें भी उपलब्ध है। साँचीके स्तूपके एक परिचक्रपर उपजकी देवीका चित्रण है। इसे सर जॉन मार्शलने 'उपजकी देवी' या लक्ष्मीका चित्र कहा है[1]।

भीटासे प्राप्त मूर्तिमें भी यही भाव है। इसमें एक स्त्रीके गलेसे कमल निकल रहा है[2]। कौशाम्बीमें एक ऐसी ही मूर्ति प्राप्त हुई है[3]। फियांसकी मुद्रामें पालथी मारकर बैठी स्त्रीके दोनों ओर नागा पुजारीका चित्र है। स्त्रीके ऊपर पीपलकी पत्तियोंका चित्रण है। प्राक्मौर्य, शुंग, कुषाणकालकी मृण्मयी मूर्तियाँ मातृदेवीको द्योतित करती हैं। तक्षशिलामें प्राप्त कुछ ऐसे मण्डल हैं जिनके भीतरी भागमें 'उत्पत्ति देवी'-का चित्र है। ये मण्डल सम्भवतः मातृदेवीकी उपासनासे सम्बन्धित हैं।

शक्तिकी अधिष्ठात्री मातृदेवीकी उपासनाका तात्त्विक रहस्य यह है कि शिव-शक्तिका समन्वित दर्शन आनन्द एवं समरसताका द्योतक है।

शक्ति-उपासना-प्रवृत्तिमार्गीय साधना

(प्राचार्य डॉ० श्रीजयनारायणजी मल्लिक, एम्० ए० (द्वय), स्वर्णपदक-प्राप्त, पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, साहित्यालंकार)

सृष्टिके प्रारम्भसे ही मानवता सम्पूर्ण विश्वमें शक्तिकी अन्वेषिका है। जीवनमें शक्तिकी ही प्रधानता है। शक्तिहीन मानव या देवताका जीवन व्यर्थ है। मानव शक्तिकी आराधना और शक्ति-संचयकी चेष्टा अनादिकालसे करता आ रहा है। परब्रह्म परमेश्वर भी आदिशक्ति महामायाकी सहायतासे ही सृष्टिका संचालन—उत्पत्ति, पालन और संहार करते आ रहे हैं। श्रौत-सूत्र, गृह्य-सूत्र और पाञ्चरात्र-आगमके अनुसार परमात्माकी तीन शक्तियाँ हैं—श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवी। ये तीनों देवियाँ शील, शक्ति और सौन्दर्यकी प्रतीक हैं। ऋग्वेदके दशम मण्डल तथा शुक्ल यजुर्वेदमें पुरुष-सूक्त, श्रीसूक्त, भू-सूक्त तथा नीला-सूक्त आये हैं। उपनिषदोंके अनुसार **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** अर्थात् ब्रह्ममें सत्यता (अस्तित्व), ज्ञान (चैतन्य) और अनन्तता (निःसीमता) है। ब्रह्ममें ज्ञातृत्व और अनुभूति है, पर क्रियाशक्ति नहीं। भगवत्तत्त्वके अन्तर्गत जो श्रीतत्त्व, शक्ति-तत्त्व और महामाया-तत्त्व हैं, वे ही सबमें क्रिया-शक्ति प्रदान करते हैं। परमात्मा यदि जगत्पिता हैं तो भूदेवी (आद्याप्रकृति या महामाया) भी जगन्माता हैं।

प्राच्य या आर्य-सभ्यताने त्याग, तपस्या, संयम, दार्शनिक अनुसंधानोंद्वारा अन्तरात्माका मन्थन किया और आध्यात्मिक शक्तिको जगानेकी चेष्टा की। मानव-मस्तिष्कमें अनन्त शक्तियाँ सोयी हुई हैं। अभीतक

१—ए गाइड टु साँची, सर जॉन मार्शल, पृ० १४०। २—ऑक्यॉलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट प्लेट १३, चित्र ४९, सन् १९११-१२। ३—कलकत्ता म्यूजियम कैटलॉग, जि० २, पृ० २९६।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन शक्तियोंका एक कण भी नहीं जग पाया, किंतु मनुष्य ग्रह-लोकमें विचरण करनेका स्वप्न देख रहा है। जिस दिन मानव-मस्तिष्ककी सारी शक्तियाँ जग जायँगी, उस दिन नर नारायणमें परिणत हो जायगा, दोनोंमें बहुत कम अन्तर रह जायगा और तब मनुष्य चिन्तन करेगा—'तत्त्वमसि', 'सोऽहमस्मि'।

शक्तिका उपासक अपनी कुण्डलिनी-शक्तिको जगाकर अद्भुत महत्त्व प्राप्त कर सकता है और तब उसके लिये—'भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।' घटित हो सकता है। पाश्चात्य सभ्यताने विज्ञानके द्वारा बाह्य-प्रकृतिपर कुछ अंशोंमें विजय प्राप्त की और भौतिक शक्तिको अपनानेकी चेष्टा की, पर आध्यात्मिक शक्ति उसके हाथमें नहीं आयी। वह अपनी अन्तः प्रकृति और वासनापर विजय नहीं प्राप्त कर सकी। प्रकृतिका विजेता मानव आज अपनी इन्द्रियोंका गुलाम बन रहा है। उसके जीवनमें सुख और शान्ति नहीं है।

मनुष्यने अन्धकारसे प्रकाशकी ओर जाना तो सीखा, पर वह असत्‌से सत्‌की ओर चलना भूल गया। हमारी प्राचीन वैदिक प्रार्थना है—'असतो मा सद्गमय· तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय।' अर्थात् 'हम असत्‌से सत्‌की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर और मृत्युसे अमरत्वकी ओर जायँ।' यह तभी सम्भव है, जब हम शक्तिकी उपासनाके द्वारा जगदम्बाके समीप पहुँच जायँ और चिन्तन करें कि 'भगवती महामायाकी ही ज्योति सारे संसारमें व्याप्त है। परा और अपराशक्तिसे ही विश्वका निर्माण हुआ है।'

मायामण्डल या प्रकृति-मण्डलकी, जिसमें असंख्य ब्रह्माण्ड पारस्परिक आकर्षण-शक्तिसे बँधे हुए तैरते-उछलते रहते हैं, संचालिका भूदेवी हैं, जो भौतिक तथा वैज्ञानिक शक्तिका केन्द्र हैं। परम-पद या आध्यात्मिक शक्तिकी संचालिका श्रीदेवी हैं। पाञ्चरात्रके शब्दोंमें संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तथा पौराणिक भाषामें ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टिके उत्पादक, पालक तथा संहारक हैं, पर वस्तुतः इनकी शक्तियाँ महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली ही सृष्टि-संचालनका कार्य सम्पादन करती हैं। श्रीरामकी शक्ति हैं श्रीसीता और श्रीकृष्णकी शक्ति श्रीराधा हैं।

लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके जीवनको सुखी, सम्पन्न और सफल बनानेके लिये, भोग और मोक्षके लिये शक्तिकी आराधनाका बहुत बड़ा महत्त्व है। मानव-जीवनका लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पदार्थोंकी प्राप्ति है। हमें लौकिक तथा पारलौकिक—अपने दोनों जीवनोंको सुखी, समुन्नत और पवित्र बनाना है। अध्यात्मपथपर अग्रसरित होकर शक्तिकी उपासना ही इसका आधार है।

मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये संसारमें बहुत-से दीपक जले हैं, पर इनमें शक्ति-उपासनाका दीपक अद्भुत एवं दिव्य है। इसकी मधुमयी, तेजोमयी स्वर्णिम, रश्मियाँ सम्पूर्ण भारतवर्षको उद्भासित कर पाश्चात्य देशोंमें भी अपनी किरणें विकीर्ण कर रही हैं। आजका संसार भौतिक भोगोंकी ओर दौड़ा जा रहा है और तदर्थ वैज्ञानिक उपलब्धियोंके लिये पागल है, किंतु प्रकृतिके अन्तरालमें जो शक्तियाँ अन्तर्हित और सुषुप्त हैं तथा जो साधनाद्वारा प्राप्त की जा सकती हैं, उनकी ओर आँख उठाकर देखनेकी भी किसीको अवसर नहीं है।

दूर अन्तरिक्षमें भगवतीकी उपासनाका मार्गप्रदर्शक तारा चमक रहा है। हमारे प्राचीन ऋषि और आचार्य हाथ उठाकर इस मधुमयी ज्योतिकी ओर संकेत करते हुए कह रहे हैं—'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विज्ञान तो हमारे हाथमें केवल एक भौतिक शक्ति देता है, पर उस शक्तिके अभिमानमें हमें पराशक्ति या आध्यात्मिक शक्ति या शक्तिकी उपासना नहीं भूल जानी चाहिये।

मानव सृष्टिका शृङ्गार है। उसके अन्तस्तलमें महामायाकी एक ज्योति जल रही है, जो उसे निम्न स्तरसे ऊपर उठकर सत्कर्म करनेकी ओर प्रेरित करती रहती है और जीवन-यात्रामें उसका पथ-प्रदर्शन करती है। गायत्री-मन्त्र जगन्माता भगवतीका ही रूप और संकेत है। जब जीवनमें विनाशकी आँधी उठती है और तूफानी हवामें उत्ताल-तरंगमाल-संकुल विषय-पयोधि लहराने लगता है, तब भव-सागरके ज्वारमें एवं मोहजनित अनन्त धूलिकणोंसे आच्छादित वातावरणमें यह ज्योति क्षीण और मटमैली हो जाती है। मानव-जीवनमें यह दिव्य प्रकाश जितना ही जाज्वल्यमान रहेगा, मानवता उतनी ही प्रचुर मात्रामें उसके अन्तस्में वर्तमान रहेगी।

मानवता जब कर्तव्य-ज्ञान भूलकर भोग-वासनाकी ओर झुक जाती है, तब उसका नाम हो जाता है 'पशुता' और जब वह उलट जाती है, तब उसे कहते हैं 'दानवता'। पशुता मानवताकी कमजोरी है और दानवता मानवताकी मौत। हमें जगन्माताको प्रसन्न करनेके लिये पशुता और दानवता—दोनोंका बलिदान करना होगा तथा मानवताको पवित्र तथा निर्मल बनाकर उसे देवत्वकी ओर ले जाना होगा।

हमारा यह स्थूल शरीर अन्नमय कोश कहलाता है। इसके अन्तर्गत सूक्ष्म शरीर है, जिसमें प्राणमय कोश तथा मनोमय कोश हैं। भौतिक तत्त्वोंसे केवल स्थूल शरीरका निर्माण हुआ है। सूक्ष्म शरीरका निर्माण मन, बुद्धि, अहंकार, पञ्च ज्ञानेन्द्रियों तथा पञ्च कर्मेन्द्रियोंसे हुआ है। इसी सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत चैतन्यके रूपमें महामायाकी ज्योति जल रही है। शक्तिकी उपासनासे यह ज्योति और भी जाज्वल्यमान हो जाती है। प्रकृति-देवीने मानव-मस्तिष्कमें शक्तिका भण्डार भर दिया है। भगवतीकी उपासनासे हमें इन सोयी हुई शक्तियोंको जगाना है। देवीकी आराधनासे अथवा तन्त्र या योगके माध्यमसे यदि मूलाधार-चक्रके ऊपर माया-सर्पिणीके रूपमें स्थित केवल कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत् होकर मनुष्यके वशीभूत हो जाय तो मनुष्यके हाथमें निश्चय ही अद्भुत और अलौकिक शक्ति आ जायगी। जितनी शक्तियाँ अखिल विश्व-ब्रह्माण्डमें या प्रकृतिके बाह्यरूपमें अन्तर्निहित हैं, उतनी ही शक्तियाँ मानव-शरीरके अन्तर्गत छिपी हुई और सोयी हुई हैं। यदि शक्तिकी उपासना अथवा तन्त्र या योगके माध्यमसे इन शक्तियोंको जगाया जाय तो मनुष्य देवत्वमें परिणत हो जायगा। इडा और पिंगला नाडियोंके बीचमें स्थित सुषुम्ना नाडीमें जो षट्चक्र हैं, उनका भेदनकर शतदल-कमलमें होकर यदि जीव सहस्रदल-कमल (बृहत् मस्तिष्क)में प्रविष्ट हो जाय तो हृदयकी गाँठ स्वतः खुल जायगी और मनुष्य सर्वज्ञ तथा शक्तिशाली बन जायगा।

शक्तिकी उपासनामें हमें अपनी इच्छाओं और प्रवृत्तियोंका सर्वथा दमन नहीं करना पड़ता, केवल उन्हें परिमार्जित करना पड़ता है। शक्तिकी उपासना प्रवृत्ति-मार्गीय साधना है, हमारी प्रवृत्तियाँ दूषित और कलुषित न हों—इसका विशेष ध्यान रखना है। इसमें केवल वैराग्यकी शुष्कता ही नहीं है, सौन्दर्य और माधुर्य भी है तथा रस और मधु भी है। भगवतीकी विधिवत् आराधनासे जीवनका चरम उत्कर्ष उपलब्ध होता है। यह निःसंदेह अनुभवगम्य और साधना-सापेक्ष है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्तिपूजामें प्रस्तर-मूर्तिकला और भारत

हिंदूधर्मके सबसे बड़े क्षेत्र भारतके अनेक भागोंमें प्रस्तर-मूर्तियाँ स्थापित हैं, जो शास्त्रोंके अनुरूप देवी-भक्तोंके लिये परम पवित्र और परम पूज्य मानी जाती हैं।

महालक्ष्मी

महालक्ष्मीको देवियोंमें सबसे प्रधान माना जाता है। देव्यथर्वशीर्षमें **'महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्'** कहा गया है और देवी-आराधनाका प्रधान ग्रन्थ 'दुर्गासप्तशती' भी **'सर्वस्याद्या महालक्ष्मीः'** आदि नामोंमें इन्हींको मूल-प्रकृति मानता है।

महालक्ष्मीकी मूर्तियाँ भी प्रधानरूपसे भारतमें पायी जाती हैं। महाराष्ट्र प्रान्तमें कोल्हापुर नामक स्थानमें महालक्ष्मीकी भव्य मूर्ति है। इस मूर्तिमें चार भुजाएँ हैं, जिनमें पात्र, गदा, बिल्व तथा खेटकके चिह्न हैं।

योगशक्ति

शक्तिको कुण्डलिनी-शक्तिका पर्याय माना गया है। प्रस्तर-कलाओंमें कुण्डलिनीके छः चक्रोंका उत्कीर्णन पाया जाता है। पत्थर या धातुपत्रोंपर इनके संकेत प्राप्त होते हैं। इनकी पूजाका भी वही महत्त्व है, जो देवी-मूर्तिकी पूजाका है। प्रायः इन यन्त्रोंको बनवाकर उन्हें पहननेकी प्रथा भारतमें मिलती है। दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें धातुमयी योगशक्तिके चक्रोंका स्वरूप प्रायः देखनेको मिलता है।

शक्तिमूर्ति

विभिन्न देवोंकी देवियाँ उनकी शक्तियाँ हैं। मार्कण्डेय-पुराणमें शुम्भ-निशुम्भ-वध-प्रकरणमें अलग-अलग देवोंकी अलग-अलग देवियोंके युद्ध-भूमिमें प्राकट्यका वर्णन है। अतः प्रस्तर-कलाओंमें विभिन्न देवोंके साथ उनकी देवियोंका भी उत्कीर्णन प्रायः मिलता है। सर्वाधिक मूर्तियाँ शिवकी प्राप्त होती हैं।

नवदुर्गा-मूर्तियाँ

नवदुर्गा-मूर्तियाँ काशीमें उपलब्ध हैं। अन्यत्र भी नवदुर्गाकी मूर्तियाँ मिलती हैं। प्रायः इन मूर्तियोंमें तीन नेत्रोंका उत्कीर्णन है। जिससे यह सिद्ध होता है कि शिवकी पत्नी पार्वतीके ही नौ रूप दुर्गाकी नौ मूर्तियोंके रूपमें प्रस्तर-कलाओंमें प्रतिष्ठित हैं। प्रचलित नौ दुर्गा नामोंके साथ-साथ आगमोंमें नीलकण्ठी, क्षेमंकरी, हरसिद्धि, रुद्रांश-दुर्गा, वन-दुर्गा, अग्निदुर्गा, जप-दुर्गा, विन्ध्यवासिनी-दुर्गा और रूपमारी-दुर्गा नाम भी मिलते हैं। इनमेंसे विन्ध्यवासिनीकी मूर्ति मिर्जापुर जिलेमें प्राप्त होती है।

भद्रकाली-मूर्ति

दक्षिणकाली और अन्य कालीके भेदोंपर आधृत मूर्तियाँ तो बहुत मिलती हैं, पर भद्रकाली-मूर्तिका प्रायः अभाव-सा दीखता है। दक्षिणमें भद्रकाली-मूर्तिका एक शास्त्रीय स्वरूप मिलता है, जिसमें देवी कमलपर आसीन हैं, उनके तीन नेत्र हैं और चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, त्रिशूल तथा डमरू दिखलाया गया है।

महिषासुरमर्दिनी

महिषासुरमर्दिनी-मूर्तियाँ शिल्पकारोंमें विशेष प्रचलित हैं। प्रायः अनेक मन्दिरोंमें महिषासुरका मर्दन करती भगवतीका श्रीविग्रह मिलता है। यह स्वरूप यद्यपि प्रायः सप्तशतीपर आधृत है, तथापि कहीं-कहीं शिल्पियोंने कल्पनासे कुछ परिवर्तन भी कर दिया है।

पार्वती

यों तो ये सब देवताओंकी शक्तियाँ हैं और तद्रूप देवीमूर्तियाँ भी प्रायः प्राप्त हैं, पर आगम (शाक्त) शास्त्रमें शिवाके निर्विवाद महत्त्वके कारण अम्बा, नन्दा, मङ्गला, त्रिपुरा, रौद्री, वामा, योगेश्वरी, काली, जयन्ती आदि शक्तियोंका वर्णन मिलता है और यही कारण है कि

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पार्वतीके अनेक रूपों और अवतारोंके भेदपर आश्रित अधिकांशतः प्रस्तर-मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। गौरी-पूजनका व्यापकत्व इस तथ्यका प्रमाण है। तथापि प्रायः प्रतीक-स्वरूप पूजा-पद्धतिके प्रचलनके कारण पार्वतीकी मूर्तियों-का अभाव-सा है। शिवके साथ तो प्रायः उनकी मूर्तियाँ मिलती हैं, उनके अष्टभुजरूप भी बहुत मिलते हैं, पर विशुद्धरूपसे अकेला पार्वतीका श्रीविग्रह कम मिलता है। इधर इलोरा (एलोरा) गुफामें पार्वतीकी एक सुन्दर मूर्ति मिली है। यह चतुर्भुजी मूर्ति कमलासनपर विराजमान है और उसके मस्तकपर सुन्दर मुकुट शोभायमान है। दायें हाथोंमें रुद्राक्षमाला, शिवलिङ्ग और वाम हाथोंमें कमण्डलु तथा गणेश-मूर्ति दिखायी गयी है।

वैष्णवी शक्ति

वैष्णवी शक्ति-मूर्तियोंमें लक्ष्मीदेवीकी मूर्ति प्रस्तर-कलाओंमें प्राप्त होती है। प्रायः कमलासनपर बैठी, विष्णुके साथ खड़ी अथवा शेषशायी भगवान् विष्णुके चरणोंके समीप बैठी लक्ष्मी-मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यदि पृथक् मूर्ति मिलती है तो वह चतुर्भुजी होती है। दायें हाथोंमें कमल तथा बिल्वफल और बायें हाथोंमें अमृतघट और शङ्खके उत्कीर्णन मिलते हैं। कहीं-कहीं महाविद्याओंमें दसवीं कमलाके रूपमें इनकी मूर्ति मिलती है। इसमें श्वेत हाथियोंद्वारा घटोंसे गिरायी जाती जलधारासे भगवतीके सिरका सिंचन—अभिषेक उत्कीर्ण रहता है।

अन्य शक्ति-मूर्तियाँ

ब्राह्मी, माहेश्वरी, वाराही, कौमारी आदि देवियों, सप्तमातृकाओं, ऐन्द्री, चामुण्डा, करालवदना काली और अन्यान्य देवियोंकी प्रस्तर-मूर्तियाँ भारतभरमें प्राप्त होती हैं। शास्त्र और कल्पनाका मञ्जुल संनिवेश प्रायः प्रस्तर-मूर्तियोंमें दिखायी पड़ता है।

भारतमें शिल्पकलाके अन्तर्गत मूर्तिविधान अत्यन्त प्राचीनकालसे प्रचलित है। देवी-मूर्तियोंकी भी एक ऐतिहासिक परम्परा अपने देशमें है और इसका उत्तरोत्तर उत्कर्ष हो रहा है। यद्यपि देवी-उपासनाके शास्त्रीय और सम्प्रदायगत निर्देशोंका पालन किये बिना भी कहीं-कहीं मूर्ति-निर्माण हो जाता है तथापि मूर्ति-निर्माणकी प्राणवत्ता भारतमें आज भी सुरक्षित है। देवी-मूर्ति-निर्माण-कलाकी ज्ञात ऐतिहासिकता कितनी प्राचीन है, इस संदर्भमें इतना निवेदन पर्याप्त है कि ईसवी सन्‌के पूर्व प्रथम शताब्दीमें विदेशी शक राजा अयसके सिक्केपर राजलक्ष्मीकी मूर्ति मिलती है।

श्रीस्तुति

भानातीतप्रथितविभवां मङ्गलं मङ्गलानां
वक्षःपीठीं मधुविजयिनीं भूषयन्तीं स्वकान्त्या।
प्रत्यक्षानुश्रविकमहिमप्रार्थिनीनां प्रजानां
श्रेयोमूर्तिं श्रियमशरणस्त्वां शरण्यां प्रपद्ये॥

हे लक्ष्मी! तुम्हारा वैभव अतुलनीय और अत्यन्त प्रसिद्ध है। तुम समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल करनेवाली हो। मधुदैत्यपर विजय प्राप्त करनेवाले भगवान्‌के वक्षः-स्थलको तुम अपनी कान्तिसे अलंकृत करती हो। प्रत्यक्ष और शास्त्रसिद्ध महिमाकी प्रार्थना करनेवाले प्रजाजनोंके लिये तुम कल्याणमयी मूर्ति हो। तुम शरण्य और श्री हो। शरणहीन मैं तुम्हारी शरण ग्रहण करता हूँ।

कल्याणानामविकलनिधिः काऽपि कारुण्यसीमा
नित्यामोदा निगमवचसां मौलिमन्दारमाला।
सम्पद् दिव्या मधुविजयिनः संनिधत्तां सदा मे
सैषा देवी सकलभुवनप्रार्थनाकामधेनुः॥

जो कल्याणकी परिपूर्ण निधि हैं, करुणाकी सीमा हैं, नित्य आनन्दरूपा हैं, श्रुतियोंके मस्तकको अलंकृत करनेवाली मन्दारपुष्पोंकी माला हैं, मधुविजेता विष्णुकी दिव्य शक्ति हैं और समस्त संसारकी प्रार्थनाओंको स्वीकार करनेवाली कामधेनु हैं, वे ये श्रीलक्ष्मीदेवी सदा मेरे हृदयमें निवास करें।

(आचार्य श्रीवेदान्तदेशिकविरचित 'श्रीस्तुति'के दो श्लोक)

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीवैष्णव-सम्प्रदायमें शक्ति-उपासना

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

'शक्ति' शब्द 'शक्' धातुसे व्युत्पन्न है। 'शक्' धातुका अर्थ है कुछ कर सकनेमें समर्थ होना। साधारणतः कुछ कर सकनेकी योग्यता या सामर्थ्य ही शक्ति है। शक्ति प्राणि-पदार्थोंका वह गुण या धर्म है जो नाना रूपोंमें कार्य करता है। चराचर जगत्‌में ऐसी शक्ति है जिससे उनके सब कार्य और उद्योग होते हैं। सम्पूर्ण जगत्‌में भगवान् विष्णुकी शक्ति व्याप्त है, ऐसा 'विष्णुपुराण'का कथन है—

एतत् सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥
(६। ७। ६०)

'यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है। समष्टि शक्ति भगवान् विष्णुकी शक्ति है। वह शक्ति लक्ष्मीजी हैं—

अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम।
(वि० पु०)

भगवान्‌की शक्ति भगवत्स्वरूपा है। श्रीदेवी भगवान् श्रीविष्णुसे कभी पृथक् नहीं होतीं। अर्थ और वाणी, नियम और नीति, बोध और बुद्धि, धर्म और सत्क्रियाकी भाँति भगवान् श्रीहरि भगवती देवीसे सदैव संयुक्त रहते हैं। 'विष्णुपुराण'में कहा गया है—

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्॥
(१। ८। १८)

भगवान् विष्णु जब-जब अवतरित होते हैं, तब-तब श्रीदेवी उनकी सहायिका रहती हैं। श्रीहरिके श्रीराम होनेपर श्रीजी सीताजी होती हैं तो श्रीकृष्णावतारमें रुक्मिणीजी। श्रीदेवीके सहयोगसे ही श्रीभगवान्‌के सब कार्य होते हैं। वे श्रीजीके साथ ही सब प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। भगवती लक्ष्मी सर्वलोकोंकी माता और श्रीहरि पिता हैं—

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
(वि० पु० १। ९। १२६)

माताका महत्त्व सर्वोपरि है। सम्भवतः इसीलिये सभी सम्प्रदायके साधक किसी-न-किसी रूपमें आदिशक्ति जगन्माता भगवतीकी उपासना करते हैं। श्रीवैष्णव-सम्प्रदायकी तो प्रवर्तिका ही भगवती श्रीदेवी हैं। इसीलिये यह 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है। श्रीसम्प्रदायके मतानुसार भगवान् श्रीविष्णु और भगवती लक्ष्मीजी सम्मिलित रूपसे जगत्‌के उत्पादक, पालक एवं मोक्षप्रद और प्रपत्तिके योग्य हैं—

श्रीशौ द्वौ मिलितावेव जगद्धेतुविमुक्तिदौ।
प्रपत्तव्यौ च……" (श्रीतत्त्वसिद्धाञ्जन)

पञ्चरात्रागमान्तर्गत लक्ष्मीतन्त्र (२८। २४)में भी इस आशयकी उक्ति है—

लक्ष्म्या सह हृषीकेशो देव्या कारणरूपया।
रक्षकः सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेऽपि च गीयते॥

वैष्णव-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसमें श्रीअवधवासियोंके परामर्शका जो उल्लेख किया है, उससे विदित होता है कि भगवती श्रीसीतासे संयुक्त भगवान् श्रीराम सम्भजनीय और भवभीरभञ्जन हैं—

जनक सुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन भवभीरहि॥

वैष्णव लक्ष्मी और नारायण दोनोंकी उपासना करते हैं, किंतु माता होनेसे लक्ष्मीजीकी ही उपासना पहले की जाती है। भगवान् श्रीहरि सबके पिता हैं। पिता हितेच्छु होता है। वह हितके लिये पुत्रपर क्रुद्ध भी होता है। भगवान् पापी जनोंपर उनके हितके लिये ही क्रोध करते हैं। इसीलिये अपराधियोंको भगवान्‌के

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्मुख होनेमें भय होता है; किंतु श्रीदेवीके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है। वे सबकी माता हैं। माताएँ प्रियवर होती हैं। श्रीदेवीमें तो वात्सल्य, करुणा, क्षमा आदि गुण इस प्रकार विकसित हैं कि उन्हें कभी क्रोध आता ही नहीं। वे सदा अनुग्रहशीला रहती हैं—**'सदानुग्रहसम्पन्ना सा मे देवी प्रसीदतु'** (मंकणसंहिता) इसीलिये उनकी शरणागति सरल है। वे अपराधीको भी दयावश स्वजन बना लेती हैं और भगवान्‌को भी समझाकर उनका क्रोध शान्त कराकर क्षमा करवा देती हैं। इस कथनका आधार गुणरत्नकोश-स्तोत्रके रचयिता श्रीपराशर भट्टजीका यह हृदयोद्गार है—

पितेव त्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसि जने
हितस्रोतोवृत्त्या भवति च कदाचित् कलुषधीः।
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः॥

(श्रीगुणरत्नकोश ५२)

'हे जननि! आपके परमप्रिय पति अति पापीजनोंके प्रति उनके हित करनेकी इच्छासे कभी-कभी सामान्य पिताकी भाँति कलुष-बुद्धि (क्रुद्ध) हो जाते हैं, किंतु आप 'यह क्या! आप कैसे क्रुद्ध हुए, इस जगत्‌में निरपराध भी कोई है?' ऐसा कहकर उचित उपायोंसे उनके क्रोधको विस्मृत कराकर अपराधियोंको स्वजन बना लेती हैं। इस कारण आप हमारी माता हैं।'

भगवती श्रीदेवीके इस प्रकारके असीम औदार्यसे आकर्षित श्रीवैष्णवाचार्य भगवत्समाश्रयणकी सिद्धिके लिये पहले श्रीभगवतीका समाश्रयण करनेका परामर्श देते हैं। स्वयं आचार्यप्रवर स्वामी श्रीरामानुजाचार्यजीने अपने शरणागति-गद्यमें श्रीपतिकी शरणागतिके पूर्व भगवती श्रीकी प्रपत्ति करते हुए कहा है—

'भगवन्नारायणाभिमतानुरूपस्वरूपरूपगुणविभवै-श्वर्यशीलाद्यनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणां पद्मवनालयां भगवतीं श्रियं देवीं नित्यामनपायिनीं निरवद्यां देवदेवदिव्यमहिषीमखिलजगन्मातरमस्मन्मातरमशरण्यशरण्यामनन्यशरण्यः शरणमहं प्रपद्ये।'

अर्थात् भगवान् श्रीनारायणके अभिमत एवं अनुरूप स्वरूप, रूप, गुण, विभव, ऐश्वर्य, शील आदि असीम निरतिशय असंख्य कल्याण-गुणगणोंसे युक्त कमलवन-निवासिनी, भगवान्‌से नित्य संश्लिष्ट, निर्विकार, देवदेव श्रीहरिकी दिव्य महिषी, समस्त जगत्‌की माता, हमारी माता अशरण जीवोंकी रक्षिका भगवती श्रीदेवीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ, मेरा और कोई रक्षक नहीं है।

लोगोंमें तीन प्रकारकी कामनाएँ पायी जाती हैं। अधिकांश लोग सांसारिक वैभव-भोग चाहते हैं, कुछ मोक्ष चाहते हैं और कुछ वैष्णवसम्मत परमपद, जहाँ श्रीभगवान्‌की समीपता और सेवा प्राप्त होती है। इन तीनोंकी प्राप्ति श्रीजीकी कृपासे ही सम्भव है। इसलिये उनकी प्रपत्तिकी प्रेरणा करनेके लिये स्वामी श्रीयामुनाचार्यजी श्रीवरदवल्लभा-स्तोत्रमें कहते हैं—

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासंधुक्षणाद्रक्ष्यते
नष्टं प्राक्तनलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्रत्यनन्तोदयम्।
श्रेयो न ह्यरविन्दलोचनमनःकान्ताप्रसादादृते
संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां सम्भाव्यते कर्हिचित्॥

अर्थात् भूमि, आकाश और पातालमें रहनेवाले जीव-गणोंपर जब आपका कृपाकटाक्ष नहीं पड़ा था, तब वे नष्टप्राय पड़े थे। आपका करुणानिरीक्षणामृत जब उनके ऊपर पड़ा, तब उनका अभ्युदय हुआ। संसारसुखोंका अनुभव करनेमें, आत्मानुभव करनेमें और परमपद पानेमें जीवोंको जो सुख होता है, वह सुख कमलनयन भगवान् श्रीहरिकी कान्ताकी कृपाके बिना सर्वथा असम्भव है।

श्रीभगवतीके दृष्टि-निक्षेपकी महिमा अपार है। 'मंकणसंहिता'के वचनानुसार तो भगवान् श्रीमन्नारायणके वैभवका कारण भी श्रीदेवीका निरीक्षण ही है—

सामर्ग्यजुर्मयीं देवीं वेदगर्भां मनस्विनीम्।
लोकेशशिविभूतीनां कारणं यन्निरीक्षणम्॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् साम-ऋक-यजुर्वेदमयी, वेदको प्रकट करनेवाली उदारदेवीको नमस्कार है, जिनका निरीक्षण लोकपालोंके ईश श्रीमन्नारायणके ऐश्वर्यका भी कारण है। वैष्णवोंद्वारा अपने आराध्य देवके ऐश्वर्यकी विधायिका भगवती श्रीके समक्ष श्रद्धावनत हो उन्हें प्रसन्न करना स्वाभाविक ही है।

श्रीवैष्णववर्य श्रीवत्साङ्क मिश्रजीके 'श्रीस्तव'में उल्लिखित है कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीमन्नारायण श्रीदेवीकी प्रसन्नताके लिये ही अखिल जगद्विधानादि लीला करते हैं—

यस्या वीक्ष्य मुखं यदिङ्गितपराधीनो विधत्तेऽखिलं क्रीडेयं खलु नान्यथास्य रसदा स्यादेकरस्या तया ॥

अर्थात् जिन श्रीजीका मुख जोहकर संकेतपर उनके अधीन रहकर श्रीभगवान् सब कार्य करते हैं, उनकी लीला श्रीजीके बिना रसनीय नहीं होती। तात्पर्य यह कि श्रीजीके सांनिध्यके बिना भगवद्रस आस्वादके योग्य ही नहीं होता। इसलिये श्रीसम्प्रदायमें भगवान् श्रीहरिके उपासकोंके लिये पहले श्रीजीकी ही शरणागति लेनेका विधान है। इस सम्प्रदायकी आदि आचार्या होनेसे भी श्रीदेवी ही आद्योपास्या हैं।

ज्योतिष-शास्त्रमें शक्ति-उपासना

(श्रीकृष्णपालजी त्रिपाठी, एम्० ए० (हिंदी, संस्कृत, समाजशास्त्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति), एल्० टी०)

प्रायः सभी हिंदू-धर्मग्रन्थोंमें शक्ति-उपासनाका माहात्म्य किसी-न-किसी रूपमें वर्णित है। फिर ज्योतिष-शास्त्र इससे अछूता कैसे रह सकता है? ज्योतिष-शास्त्रमें ग्रहोंका अनेक वर्गीकरण किया गया है, जिनमें एक वर्गीकरण इस प्रकार भी है कि सूर्य, मंगल एवं गुरु पुरुष-ग्रह, शुक्र और चन्द्र स्त्री-ग्रह तथा बुध, शनि नपुंसक-ग्रह हैं। यदि स्त्री-ग्रहोंकी दशा-अन्तर्दशा कष्टदायक हो तो उसकी शान्ति-हेतु शक्ति-उपासनाका ही निर्देश किया गया है। नपुंसक-ग्रहोंकी दशाओंमें भी शक्ति-उपासना निश्चय कल्याणकारी सिद्ध होती है। ज्योतिष-शास्त्र-प्रवर्तक महर्षि पराशरने अनेक कष्टकारी दशाओंमें कष्टनिवृत्ति-हेतु शक्ति-उपासनाका निर्देश किया है। यहाँ कुछ दशा-अन्तर्दशाका उल्लेख किया जा रहा है, जिनके लिये शक्ति-उपासना आवश्यक है।

सूर्यकी महादशामें राहुकी अन्तर्दशा हो और वह राहु द्वितीय या सप्तम स्थानपर हो अथवा द्वितीयेश सप्तमेशके साथ हो तो अपमृत्युका भय होता है तथा नाना प्रकारकी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। इसकी शान्ति-हेतु दुर्गापाठ कराना चाहिये। सूर्यकी महादशामें कष्टकारी केतुकी शान्ति-हेतु दुर्गापाठका विधान है। इसी प्रकार शुक्रकी अशुभ दशान्तर्दशामें दुर्गापाठ-जपका निर्देश है।

मंगलकी महादशामें यदि द्वितीयेश या सप्तमेश चन्द्रकी अन्तर्दशा हो तो अकालमृत्यु होती है। इसकी शान्ति-हेतु दुर्गा एवं लक्ष्मीका जप कराना चाहिये। राहुकी महादशामें द्वितीयेश-सप्तमेश शुक्रकी अन्तर्दशा आनेपर अकालमृत्युका भय होता है। इसकी शान्ति-हेतु दुर्गा एवं लक्ष्मीका जप कराना चाहिये। गुरुकी महादशामें द्वितीयेश-षष्ठेश चन्द्रकी अन्तर्दशामें शारीरिक पीड़ासे निवृत्ति-हेतु दुर्गापाठ कराना सर्वोत्तम उपाय है। शनिकी महादशामें द्वितीयेश-सप्तमेश शुक्रकी अन्तर्दशा आनेपर अत्यन्त आत्मक्लेश होता है। इसकी निवृत्ति-हेतु दुर्गादेवीका जप कराना चाहिये। बुधकी महादशामें द्वितीयेश-सप्तमेश शुक्रकी अन्तर्दशामें अपमृत्युका भय होता है। इसकी शान्ति-हेतु दुर्गापाठ कराना चाहिये।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केतुकी महादशामें मारक शुक्रकी अन्तर्दशामें कष्टनिवृत्ति-हेतु दुर्गापाठ कराना चाहिये। शुक्रकी महादशामें द्वितीयेश-सप्तमेश शुक्रकी अन्तर्दशा आनेपर अकालमृत्यु होती है। इसकी शान्ति-हेतु दुर्गापाठ कराना चाहिये।

तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत्। (बृ० पारा०)

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे शक्ति-उपासनाकी महत्ता एवं अनिवार्यता निर्विवाद रूपसे सिद्ध होती है। वास्तवमें शक्ति-उपासना अकालमृत्युको टालनेवाली एवं परम सुख प्रदान करनेवाली है।

जैनधर्मकी महाशक्तियाँ—भगवती पद्मावती, सरस्वती तथा कुछ अन्य देवियाँ

(डॉ० श्रीनाथूलालजी पाठक)

जैनधर्मके अन्तर्गत शक्ति-उपासनाकी एक दीर्घ-कालीन परम्परा दृष्टिगोचर होती है। तीर्थंकरोंकी माताओं, शासनदेवियों और विद्यादेवियोंके रूपमें तो यह परम्परा जैनधर्मके उद्भवके समयसे ही चली आती प्रतीत होती है। अन्य धर्मोंमें भी शक्ति-पूजाकी परम्परा उनके प्रारम्भिक कालसे ही बतायी गयी है। वैदिक साहित्यमें अदिति, शची और पृथ्वीको देवताओंकी कोटिमें रखकर आदिशक्तिकी प्रतिष्ठा की गयी है। जैन-साहित्यमें भी शक्ति-पूजाका उल्लेख सर्वत्र प्राप्त होता है। भगवान् महावीरके निर्वाणके १७० वर्ष पश्चात् अर्थात् विक्रमसे ३०० वर्ष पूर्व श्रीभद्रबाहु स्वामीके 'उवसग्गहर-स्तोत्र' (उपसर्गहर-स्तोत्र)की कृतिसे यह स्पष्ट हो जाता है कि देवी पद्मावती और उसके पति धरणेन्द्रकी सहायतासे श्रीभद्रबाहु स्वामीका संघ एक व्यन्तर (यक्षादि) के घोर उपसर्गसे बच सका था।

सभी धर्मोंमें एक ही शक्तितत्त्वको भिन्न-भिन्न नामोंसे सम्बोधित किया जाता रहा है। मुनि सुकुमारसेन-(समय अनुमानित विक्रम आठवीं शताब्दी) द्वारा विरचित 'भैरव-पद्मावती-कल्प'में पद्मावती-स्तोत्रके बीसवें श्लोकमें शक्तिके समन्वयात्मक स्वरूपका परिचय देते हुए कहा गया है—

तारा त्वं सुगतागमे भगवती गौरीति शैवागमे
वज्रा कौलिकशासने जिनमते पद्मावती विश्रुता।
गायत्री श्रुतिशालिनी प्रकृतिरित्युक्तासि सांख्यागमे
मातर्भारति किं प्रभूतभणितैर्व्याप्तं समस्तं त्वया॥

'माता भारति! आप सुगतागम (बौद्धागम)में तारा, शैवागममें भगवती गौरी, कौलशासनमें वज्रा, जैनमतमें पद्मावती, वेदोंमें गायत्री और सांख्यागममें प्रकृतिके नामसे विश्रुत हैं। अधिक क्या कहूँ, आप समस्त चराचरमें व्याप्त हैं।'

जैनधर्ममें शक्तिकी उपासना कई रूपोंमें देखी जाती है। अध्ययन-सौकर्यके लिये उनका निम्न प्रकारसे वर्गीकरण किया जा सकता है—१—तीर्थंकरोंकी माताएँ, २—शासनदेवियाँ या शासनसुन्दरियाँ, ३—विद्यादेवियाँ, ४—प्रबोधित या दीक्षित देवियाँ, ५—दिक्कुमारिकाएँ, ६—सरस्वती, ७—लक्ष्मी। शक्ति-उपासनाके लिये देवियों-की मूर्तियाँ बनायी गयी हैं और मन्दिरोंका निर्माण भी किया गया है। इनकी स्तुति और प्रार्थनाके लिये स्तोत्रोंकी रचना भी हुई है। देवियोंकी स्तुतिमें रचित जैनस्तोत्र-साहित्य विपुल परिमाणमें मिलता है, जो प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओंमें निबद्ध है।

उपर्युक्त आराध्य देवियोंमें हम उपयोगिता, प्रभाव आदिके आधारपर कुछको बहुचर्चित और शेषको अल्प-चर्चित पाते हैं। इस दृष्टिसे भी इन देवियोंको निम्न भागोंमें बाँटा जा सकता है—

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैन-आराध्य देवियाँ

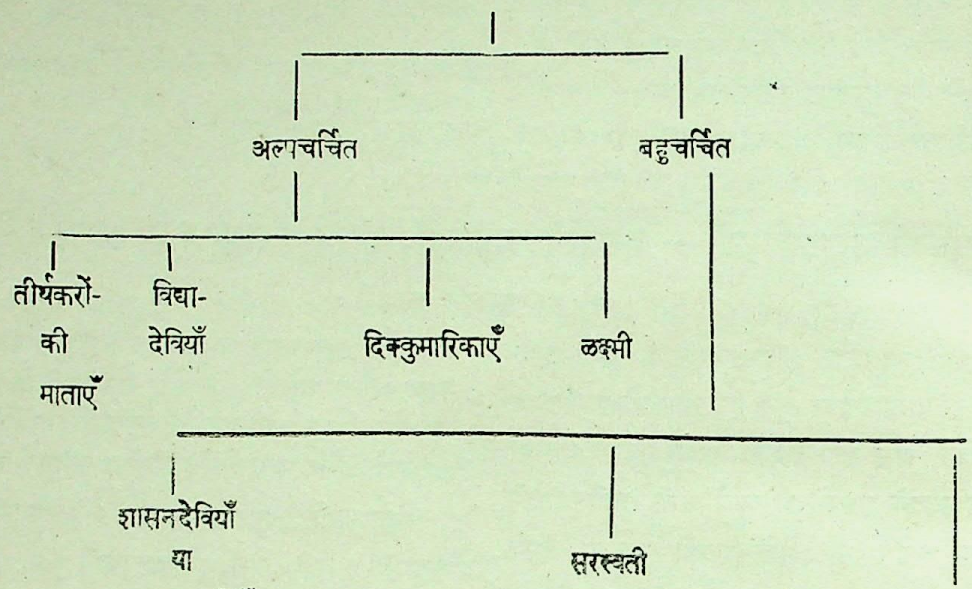

अल्पचर्चित देवियोंमें तीर्थंकरोंकी माताओंके अतिरिक्त सोलह विद्यादेवियाँ हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१–रोहिणी, २–प्रज्ञप्ति, ३–वज्रश्रृङ्खला, ४–वज्राङ्कुशा, ५–अप्रतिचक्रेश्वरी, ६–पुरुषदत्ता, ७–काली, ८–महाकाली, ९–गौरी, १०–गान्धारी, ११–सर्वास्त्र-महाज्वाला, १२–मानवी, १३–वैरोटी, १४–अच्छुप्ता, १५–मानसी और १६–महामानसी[1]।

विद्यादेवियोंके उक्त सोलह नामोंमें बारह नाम ऐसे हैं, जो तीर्थंकरोंकी शासनदेवियोंकी सूचीमें भी विद्यमान हैं। इन शासनदेवियोंका उल्लेख आगे बहुचर्चित देवियोंमें किया जायगा। विद्यादेवियोंके अतिरिक्त निम्न छः दिक्कुमारिकाएँ हैं, जो अल्पस्तुत हैं—१–श्री, २–ह्री, ३–धृति, ४–कीर्ति, ५–बुद्धि और ६–लक्ष्मी[2]।

मुनियोंके अपरिग्रही होनेके कारण लक्ष्मीदेवीकी आराधनामें कमी पायी जाती है। जैन-गृहस्थोंके यहाँ अवश्य लक्ष्मीकी पूजा-अर्चनाका क्रम निरन्तर देखा जाता है। वैसे लक्ष्मीका अन्तर्भाव दिक्कुमारिकाओंमें हो जाता है।

बहुचर्चित देवियोंका निरूपण आवश्यक जान पड़ता है। इनमें शासनदेवियाँ प्रथम हैं। चौबीस तीर्थंकरोंकी चौबीस शासनदेवियाँ मानी गयी हैं, यथा—१–चक्रेश्वरी, २–रोहिणी, ३–प्रज्ञप्ति, ४–वज्रश्रृङ्खला, ५–वज्राङ्कुशा, ६–अप्रतिचक्रेश्वरी, ७–पुरुषदत्ता, ८–ज्वालामालिनी, ९–मनोवेगा, १०–महाकाली, ११–गौरी, १२–गान्धारी, १३–वैरोटी, १४–सीलसा, १५–अनन्तमती, १६–मानसी, १७–महामानसी, १८–जया, १९–विजया, २०–अपराजिता, २१–बहुरूपिणी, २२–अम्बिका, २३–पद्मावती और २४–सिद्धायनी[3]।

इन शासनदेवियोंमें पद्मावती, अम्बिका, चक्रेश्वरी और ज्वालामालिनी देवियाँ पूर्वोत्तर क्रमसे बहुचर्चित हैं। इनका परिचय निम्न प्रकार है—

१. बी० सी० भट्टाचार्य, जैन इकनाग्राफी पृ० १६४। २. उमास्वाति—तत्त्वार्थसूत्र ३। १९। ३. यह सूची यतिवृषभद्वारा रचित तिलोयपण्णत्तिमें दी गयी है। तीर्थंकरोंके साथ इन शासनदेवियोंके नाम- क्रममें परिवर्तन हो सकता है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवी पद्मावती

देवी पद्मावती तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी शासन-देवी मानी जाती हैं। नयविमलसूरि (११ वीं शताब्दी)-के संखेश्वर पार्श्वनाथ-स्तवनमें पद्मावतीको सरस्वती, दुर्गा, तारा, शक्ति, अदिति, लक्ष्मी, काली, त्रिपुरसुन्दरी, भैरवी, अम्बिका और कुण्डलिनी कहकर पुकारा गया है। ये देवी चार हाथवाली हैं। दाहिनी ओरका एक हाथ वरद मुद्रामें उठा हुआ और दूसरा अङ्कुशसे युक्त होता है। बायीं ओरवाले एक हाथमें दिव्य फल और दूसरेमें पाश होता है। देवीके तीन नेत्र होते हैं। देवीके सिरपर तीन या पाँच फणोंका मुकुट बताया गया है। इनको कर्कुटनाग-वाहिनी कहा गया है। पद्मावती देवी भारतके अनेक प्राचीन जैन-मन्दिरों तथा यतियोंके उपासरोंमें विद्यमान हैं।

इन देवीके कार्योंके सम्बन्धमें उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ये अपने रौद्ररूपसे अत्याचारियोंका नाश और सौम्यरूपसे विश्वका कल्याण करती हैं। भगवान् पार्श्वनाथके लोकविश्रुत प्रभाव और उनसे सम्बन्धित अतिशय क्षेत्रोंके उद्भवमें पद्मावतीका बड़ा योगदान रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन देवीकी स्तुतिमें लगातार तीसरी शताब्दीसे सोलहवीं शताब्दीतक प्रभूत साहित्य लिखा गया है।

देवीअम्बिका बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथकी शासनदेवीके रूपमें प्रसिद्ध हैं। उनका निवास स्थान गिरनार पर्वत बताया गया है। अम्बिकाकी अधिक सिद्धि हो जानेसे तेरहवीं शताब्दीके मूर्तिकारोंने उनकी मूर्तियाँ भगवान् ऋषभदेवके साथ उत्कीर्ण कर दी थीं। ये भी चार हाथवाली देवी हैं। दो हाथोंमें आम्रकी डाली और पाश लिये हैं तथा दोमें अंकुश और पुत्र धारण किये हैं। शरीरका रंग सोने-जैसा और वाहन सिंह है। इन देवीके हाथोंकी संख्या आदिके विषयमें श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायमें मतभेद बताया गया है। ये देवी पूर्व-भवमें मानवी थीं और शरीर छोड़नेके पश्चात् देवी हुईं। जैन-शासनकी समृद्धिके लिये योगदान, युगप्रधान पदके लिये योग्य व्यक्तिके रूपमें जिनदत्तसूरिको संकेत करना आदि प्रमुख कार्य इन देवीद्वारा सम्पन्न हुए हैं।

देवी चक्रेश्वरी—

देवी चक्रेश्वरी भगवान् ऋषभदेवकी शासनदेवी कही गयी हैं। इनके दस हाथ और चार मुँह बताये गये हैं। कहीं-कहीं इन देवीकी मूर्तियोंमें चारसे सोलह हाथतक बनाये गये हैं। प्रत्येक हाथमें चक्र धारण करनेके कारण ही ये चक्रेश्वरी कहलाती हैं। इनका वाहन गरुड़ है। दुर्गासप्तशतीमें गरुड़वाहिनी देवीको वैष्णवीके नामसे पुकारा गया है। ये देवी बड़ी उदार, वज्र-जैसी कठोर और पुष्प-जैसी कोमल हैं।

देवी ज्वालामालिनी—

देवी ज्वालामालिनी आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभ स्वामीकी शासनदेवी हैं। ज्वालाकी माला धारण करनेके कारण ही इन्हें ज्वालामालिनी कहा गया है। करालाँगी और वह्नि भी उन्हींके नाम हैं। इनके आठ हाथ बताये गये हैं, जिनमें क्रमशः त्रिशूल, पाश, ऋष, कोदण्ड, काण्ड, फल, वरद और चक्रको धारण किये हैं। देवीका वाहन महिष है। दुर्गासप्तशतीमें महिष-वाहिनी देवी 'वाराही' नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन देवियोंका समष्टिरूपसे अध्ययन करनेपर हमें निम्नाङ्कित विशेषताओंका आभास होता है—

१—कतिपय शासन-देवियाँ तीर्थंकरोंके गुणों अथवा पूर्वभवमें उनके प्रति किये गये उपकारोंसे प्रेरित होकर उनका संरक्षण करनेमें दत्तचित्त होती हैं।

२—विघ्नों या आक्षेपका विनाश, उपसर्ग-शान्ति और जनकल्याण—इन देवियोंके मुख्य कार्य हैं।

३—इन देवियोंके वाहन, आयुध और स्वरूपोंमें भिन्नता है।

४—इन सभी देवियोंकी पाषाण और धातुकी प्रतिमाएँ पायी जाती हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५–श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों सम्प्रदायोंमें इन देवियोंकी उपासना प्रचलित है। यद्यपि अम्बिका आदि देवियोंके हाथोंकी संख्या और आयुधोंके सम्बन्धमें मतैक्य नहीं है।

६–ये देवियाँ आराधकोंको वरदान प्रदान करनेवाली, आभिचारिक क्रियाओंको निष्फल बनानेवाली, धर्म-सम्बन्धी विवादमें विपक्षीको परास्त करनेवाली, जिन-संदेशको घर-घर पहुँचानेवाली, तामसिकताका उन्मूलन करनेवाली और कीर्ति एवं सिद्धिकी स्थापना करनेवाली मानी गयी हैं।

भारतमें कोई ऐसा धर्म या सम्प्रदाय नहीं है, जिसमें विद्याकी अधिष्ठातृदेवी सरस्वतीको मान्यता न दी गयी हो। जैन-धर्ममें सरस्वतीकी चतुर्भुज-मूर्तियाँ मिलती हैं। दाहिनी ओरका एक हाथ अभयमुद्रामें उठा रहता है तथा दूसरेमें कमल रहता है। बायीं ओरके हाथोंमें पुस्तक और अक्षमाला रहती है। देवीका वाहन हंस है। सरस्वती श्वेत वर्णवाली और तीन नेत्रवाली कही गयी हैं। इनके केश-पाशमें बालेन्दु शोभा पाता है। सर्वश्रीमल्लिषेणसूरि, विजयकीर्ति, अर्हद्दास, धर्मदास, धर्मसिंह, बप्पभट्ट आदि विभिन्न कालोंके प्रसिद्ध आचार्यों और विद्वानोंने समयपर प्राकृत एवं संस्कृत भाषामें सरस्वतीकल्प आदिकी रचना प्रस्तुत की है। जैन-मन्दिरोंमें स्थान-स्थानपर सरस्वतीकी कलापूर्ण और चित्ताकर्षक मूर्तियोंके दर्शन होते हैं।

बहुचर्चित देवियोंके तीसरे वर्गीकरणमें प्रबोधित एवं दीक्षित देवीके रूपमें हम 'सचिया माता' को पाते हैं। ये देवी हिंदूदेवी महिषासुर-विमर्दिनी या चामुण्डाकी ही जैन-रूप हैं। रूप-परिवर्तनकी कथा इस प्रकार है—ये रौद्ररूपा देवी पशुबलिसे तृप्त होनेवाली थीं। जैन जनता इसी रूपमें इन्हें पूजती चली आती थी। तेरहवीं शताब्दीमें रत्नप्रभसूरिजीने जैनोंको इस देवीकी आराधना करने और इनके मन्दिरमें जानेसे रोक दिया, किंतु जैन जनता इन देवीके क्रोध और अपने परिवारके विनाशसे भयभीत हो गयी और सूरिजीके कथनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। यह देखकर श्रीसूरिजीने इन देवीको ही जैनधर्ममें दीक्षित कर लिया। एक बार देवीने स्वयं आकर सूरिजीसे अपना भक्ष्य माँगा। मिष्टान्न अर्पित करनेपर मांससे तृप्त होनेवाली देवीने उसे स्वीकार नहीं किया। सूरिजीद्वारा प्रबोधित होनेपर देवी अहिंसक बन गयीं। इस कथासे यह सार निकलता है कि यदि श्रीसूरिजीद्वारा चामुण्डाका रूप न बदला जाता तो जैन जनता परम्परागत इन शक्तिकी पूजाको नहीं छोड़ती।

इसी प्रकार 'कुरुकुल्ला' नामक देवी भी जैनोंकी आराध्या हैं। ये सर्पोंकी देवी कहलाती हैं। श्रीदेवसूरिजीने इन्हें भृगुकच्छमें अपने धर्मकी दीक्षा दी थी। सूरिजीके व्याख्यानोंसे देवी बहुत प्रसन्न हो गयी थीं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने इन देवीको वज्रयानी बौद्धोंके तान्त्रिक सम्प्रदायकी देवी बताया है, जिनकी आराधना जैनधर्ममें तेरहवीं शताब्दीसे प्रारम्भ हुई। इन देवीको धन, पुत्र, स्वास्थ्य और सौभाग्य प्रदान करनेवाली कहा गया है। इनकी कृपासे 'केवल ज्ञान' प्राप्त होता है, जो जैनसाधकका मुख्य लक्ष्य है।

इन सम्पूर्ण देवियोंकी सिद्धिके लिये मन्त्र-जाप, स्तोत्र-पाठ आदिका प्रयोग जैन-धर्ममें पर्याप्तरूपसे प्रचलित है। हिंदुओंमें शक्ति-उपासनाका प्रचार वैदिक कालसे चला आ रहा है। बौद्धोंमें भी यह परम्परा तान्त्रिकयुगमें वज्रयानी बौद्धोंसे प्रारम्भ हुई। जैन, बौद्ध और हिंदुओंमें पूजित देवियोंके तुलनात्मक अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इन धर्मोंकी उपास्य देवियोंके नाम, कार्य, स्वरूप, साधना-पद्धति आदिमें पूर्णतः समानता विद्यमान है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बौद्ध-धर्ममें शक्ति-उपासना

(स्व० दीवानबहादुर श्रीनर्मदाशंकर देवशंकर मेहता, बी०ए०)

शाक्त-सम्प्रदाय और बौद्ध-धर्म

शून्यताबोधितो बीजं बीजाद् बिम्बं प्रजायते ।
बिम्बे च न्यासविन्यासस्तस्मात् सर्वं प्रतीतिजम् ॥
(महासुखप्रकाश)

ब्राह्मणों और बौद्धोंके बीच दर्शनशास्त्र और आचार-शास्त्रमें परस्पर बहुत आदान-प्रदान हुआ है। बौद्ध-धर्मको हिंदू-धर्मसे अलग करना बहुत कठिन कार्य है। भारत-वर्षमें बौद्ध-धर्म हिंदू-धर्मके एक सम्प्रदायरूपसे प्रकट होकर पुनः उसीमें मिल गया है। बौद्ध-धर्मका तन्त्रसम्प्रदाय इस बातकी साक्षी देता है।

ब्राह्मणोंके प्राचीन वेद-धर्ममें कर्मसे पितृयान और उपासनासे देवयानकी प्राप्ति मानी जाती थी। पितृयानमें गति करानेवाले साधनको धूममार्ग अर्थात् अविद्याका मार्ग कहते थे और देवयानमें गति करानेवाले साधनको अर्चिर्मार्ग अर्थात् विद्याका मार्ग। यान अर्थात् वाहन, गतिका साधन अथवा जानेका मार्ग—ऐसा अर्थ होता है। भगवान् बुद्धके निर्वाणके बाद बौद्ध-शासनके दो मुख्य विभाग हो गये। प्रथम विभागके लङ्का आदि दक्षिणापथके अनुयायियोंने अर्हत्के समान प्रत्येक बुद्धकी निर्वाण-भावना स्वीकार की, दूसरे विभागके अर्थात् तिब्बत आदि उत्तरापथके और चीन, जापान आदि पूर्वीय देशोंके अनुयायियोंने बोधिसत्वकी लोकोत्तर कल्याण करनेकी और बुद्धकी त्रिकाय (धर्मकाय, सम्भोगकाय और निर्वाणकाय) की भावना अङ्गीकार की। प्राचीन दक्षिणापथके बौद्धोंके सम्प्रदायका नाम 'हीनयान' पड़ा और उत्तरापथके तथा पूर्वीय देशोंके अनुयायियोंके सम्प्रदायका नाम महायान।

महायान-शाखाके तान्त्रिकोंकी एक मुख्य शाखाका नाम वज्रयान या मन्त्रयान है। वज्रयान या मन्त्रयानके नौ आन्तर-सम्प्रदायोंमें सातवाँ महायोग तन्त्रयान और आठवाँ अनुत्तर तन्त्रयान क्रमशः पितृ-प्रधान और मातृ-प्रधान तन्त्र हैं। नवाँ अतियोग तन्त्रयान अद्वैतभाव-सम्बन्धी है। बौद्धगण इस तन्त्रयानके नर-देवताको वज्रधर और नारी-देवताको वज्रवाराही कहते हैं।

शून्यता और करुणाका योग वज्रधर-वज्रवाराहीके युग्मसे दिखाकर बौद्ध बुद्ध-भावको प्राप्त करनेकी तन्त्र-साधनाका निर्माण करते हैं। इस साधनामें हिंदुओंके तन्त्रोंकी तरह मण्डलरचना, बीजन्यास, मन्त्रजप, मुद्रा-प्रदर्शन, उपचार, अभिषेक, ध्यान आदि सब वैसे ही किये जाते हैं। बौद्धोंका क्रियाकलाप हिंदू तान्त्रिकोंके-जैसा ही होता है। मन्त्र भी संस्कृतमें होते हैं। केवल बुद्धदेवताके नामका अन्तर होता है। इस साधनाकी अवधिमें भावनाका अन्तिम फल अपने लिये प्रकट होनेवाला है—इसका निर्देश किया जाता है। जैसे—

ॐ स्वभावशुद्धः सर्वधर्मस्वभावशुद्धोऽहम्।

'मैं स्वभावशुद्ध हूँ, सर्वधर्मोंके स्वभाव मेरेमें नहीं हैं, ऐसा हूँ।'

ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम्।

'मैं सर्वधर्म और पुद्गलकी वास्तव सत्ताके बिना शून्य स्वभावका, अचल ज्ञानका स्वभावरूप हूँ।'

उपर्युक्त बौद्धतन्त्रप्रक्रियाके सार-संग्रहसे यह समझमें आता है कि मन्त्रशक्तिका स्वीकार वज्रयानके तीनों तन्त्रोंमें किया गया है। शाक्त साधनाका निरूपण हिंदू-तन्त्रोंके अनुसार है। केवल देवताका नामभेद है, परंतु वस्तुके नामभेदसे वस्तु-स्वरूप नहीं बदलता, यह बात प्रत्येक विवेकी पुरुष सरलतासे समझ सकता है।

श्रीचक्रसम्भार नामक बौद्ध-तन्त्रके गुरुओंकी परम्परा देखनेसे ज्ञात होता है कि ई० स० १२३३ से पहले

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्नीस गुरु हो गये हैं। यदि इनमें तीस-तीस वर्षका अन्तर माना जाय तो ई० स० १२३३ के पाँच सौ सत्तर वर्ष पूर्व मन्त्रयानका प्रवेश हिंदुस्तानसे तिब्बतमें हुआ प्रतीत होता है। अर्थात् ई० स० ६६३के समय शाक्त-सम्प्रदाय यहाँ स्थापित हुआ हो, ऐसा निश्चित अनुमान होता है।

बौद्धोंकी वज्रवाराही देवी प्रायः ब्राह्मणोंकी वाराही अथवा दण्डिनीके साथ मिलती-जुलती हैं। उपासनाक्रम भी लगभग एक-सा ही है।

बौद्धोंकी विशेष देवीका दूसरा रूप तारा है। ताराकी उपासना हिंदुओंमें भी प्रचलित है। ब्राह्मण और बौद्ध ॐकार अथवा प्रणवको 'तार' कहते हैं। उस देवताकी पत्नीका नाम तारा रखा गया है। बौद्धोंकी तारादेवीके सम्बन्धमें विपुल संस्कृत-साहित्य प्राप्त है। लगभग तैंतीस ग्रन्थ ताराके[1] सम्बन्धमें हैं। इन सब ग्रन्थोंमें ताराके दिव्य स्वरूपकी भावनाके सिवा उपासनाके पञ्चाङ्गोंका[2] अर्थात् पटल, पद्धति, कवच, नामसहस्र और स्तोत्रका सविस्तर वर्णन है। जैसे ब्राह्मणोंका श्रीविद्या और कालीविद्याका विपुल साहित्य है, वैसा ही तारा-विद्याका बौद्धोंका भी है। तार-ताराका युग्म शिव-शक्तिके युग्मके समान है।

महायानकी तारादेवीके समान ही हीनयानकी 'मणिमेखला' देवी हैं। लङ्का, स्याम आदि देशोंमें वे समुद्रकी देवीके रूपमें पूजी जाती हैं। महाजनक-जातक (महानिपात) और शङ्खजातक (दशनिपात)-में इन समुद्र-देवताका उल्लेख है और ये समुद्रके तूफानके समय रक्षा करनेवाली देवी मानी जाती हैं।

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीकी शक्ति-उपासना

[सन् १६६६–१७०८]

(श्रीरामनारायणजी जोशी, एम्० ए०)

संत सिपाही श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी महाराज हिंदू-धर्मके सिख-पंथके दसवें (दशमेश) और अन्तिम देहधारी गुरु और सिख-सम्प्रदायको पाँच ककारयुक्त (कच्छ, कड़ा, कृपाण, कंघा, केश) रूपप्रदाता विश्व-प्रसिद्ध नेता थे। आपने अपने अनन्तर श्रीगुरुग्रन्थ-साहिबको ही सिख-पंथका 'गुरु' घोषित किया।

आपने सन् १६९९ में पंजाबके प्रसिद्ध धार्मिक स्थान आनन्दपुर साहिबमें अपने पाँच प्रमुख, निःस्वार्थी, बलिदानी, निर्भीक शिष्योंको गुरुपेण बाटेका अमृत छकाकर सिख-पंथकी साजना (स्थापना)की घोषणा की और पुनः स्वयं भी उन्हीं शिष्योंके कर-कमलोंसे अमृत ग्रहण करके उन सिख-संगतके प्रति-निधियोंको अपना गुरु स्वीकार किया।

१–१–उग्रतारापञ्चाङ्ग, २–ताराकल्प, ३–ताराकल्पलता, ४–ताराकवच, ५–तारातत्त्व, ६–तारातन्त्र, ७–तारापञ्जिका, ८–तारापञ्चाङ्ग, ९–तारापद्धति, १०–तारापाराजिका, ११–तारापूजनवल्लरी, १२–तारापूजनन्यासविधि, १३–तारापूजा-प्रयोग, १४–तारापूजारसायन, १५–ताराप्रदीप, १६–ताराभक्ततरङ्गिणी नाटक, १७–ताराभक्तिसुधार्णव, १८–तारामूलबोध, १९–तारारहस्य, २०–तारारहस्यवृत्तिका, २१–तारार्चनचन्द्रिका, २२–तारार्चनतरङ्गिणी, २३–तारार्णव, २४–ताराविकल्प, २५–ताराविलासोदय, २६–ताराषट्पदी, २७–तारा-अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, २८–तारा-सहस्रनाम, २९–तारासूत्र, ३०–तारास्तोत्र, ३१–तारिणी-पारिजात, ३२–स्रग्धरास्तोत्र, ३३–स्रग्धरास्तोत्रटीका।

२–[illegible] पृष्ठ, ९८।

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुरु सिमर मनाई कालका खण्डे की वेला
पीवहु पाहुल खण्डेधार हुइ जनम सुहेला ।
गुर-संगत कीती खालसा मनमुखी दुहेला
वाह वाह गोविन्दसिंह आपे गुरु चेला ॥

पंथ-साजनासे पूर्व श्रीगुरुजीने कालकादेवीकी आराधना की और शिवा (दुर्गा भवानी)से वरदान माँगा—

देह शिवा बर मोहे इहै शुभ कर्मन ते कबहुँ न टरों ।
न डरों अरि सों जब जाए लरों निश्च कर अपनी जीत करों ॥
अरु सिक्ख हौं अपने ही मन कौ वह लालच हौं गुण तै उचरों ।
जब आवकी औध निदान बने अत ही रन मैं तब जूझ मरों ॥

हे शिवा भवानी ! मुझे यह वरदान दे कि मैं शुभ कर्म करनेसे कभी पीछे न हटूँ । जब शत्रुके साथ युद्ध करूँ तो मैं कभी न डरूँ और अवश्य ही विजय प्राप्त करूँ । मैं अपने मनका स्वयं शिक्षक बनूँ और मेरी यही लालसा—लोभ हो कि मैं सदा-सर्वदा तेरे गुणगान करता रहूँ तथा तुझे सदा स्मरण करता रहूँ और जब आयुका अन्तिम समय आये, तब मैं घोर समराङ्गणमें युद्धरत हो शहीदी प्राप्त करूँ ।

वास्तवमें शक्ति भवानी ही श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीकी इष्टदेवी थीं और वे शक्तिको ही अकाल पुरुष—परमपिता परमात्माका प्रतीक मानते थे ।

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी महाराजने अपने करकमलोंसे दशम ग्रन्थको व्रजभाषामें लिखा और अपने बावन विद्वान् कवियोंद्वारा हिंदू साहित्य और इतिहासका अनुलेखन तथा अनुवाद कराया । उनके द्वारा संकलित महाग्रन्थका नाम 'विद्यासागर' था, परंतु भारतके दुर्भाग्यसे वह ग्रन्थ घल्लूघारेके समय सरसा नदीकी भेंट हो गया । कहते हैं कि इस ग्रन्थका बोझ बावन मन था और वह सम्पूर्ण व्रजभाषामें (गुरुमुखी लिपिमें) लिखित था । (इसका एक छोटा-सा खण्ड टहकण कविद्वारा लिखित जयमसी अश्वमेध लेखकके पास सुरक्षित है ।)

श्रीगुरुजीके दशम ग्रन्थमें भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, चौबीस अवतारोंकी कथाओंके साथ-साथ त्रिया-चरित्र, उनका निजी जीवन और चित्र-नाटक, चण्डी-चरित्र क्रमाङ्क एक और दो सम्मिलित हैं । स्मरण रहे कि श्रीगुरुजीने केवल एक छोटी-सी पुस्तिका 'चण्डी दी वार' ही पंजाबी भाषामें लिखी है । उस पुस्तिकामें भी चण्डीकी महिमाका ही गान किया है ।

नयनादेवी (आनन्दपुरसे ७ कि० मी०)के स्थानपर आपने शतचण्डीयज्ञ पण्डित केशवरामसे करवाया और भगवतीसे वरदानरूपमें तलवार प्राप्त की और कहा—

खग खण्ड विहँडं खलदलखण्डं
अतिरणगण्डं बरबण्डम् ।
भुजदण्ड-अखण्डं तेजप्रचण्डं
जोति-अमण्डं भान-प्रभम् ॥
सुख-सन्तां-करणं दुरमत-दरणं
किलबिख हरणं अस सरणम् ।
जै जै जगकारण सृष्टि-उबारण
मम प्रतिपारं जै तेगम् ॥
(बचित्र नाटक)

वे अस्त्र-शस्त्रोंको ही अपना पीर (इष्टदेव) मानते हैं—

'अस कृपाण खण्डो खड्ग तुबक तबर अरु तीर ।
सैफ सरोही सैथी यही हमारो पीर ॥

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी 'चण्डी-चरित्र'का श्रीगणेश ही चण्डी-स्तुतिसे करते हैं—

जोत जगमगै जगत मैं चण्ड चमुण्ड प्रचण्ड ।
भुज दण्डन दण्डनि असुर-मण्डन भुईं नव खण्ड ॥
तारन लोक-उधारण भूमिहि दैत-संहारण चण्ड तुही है ।
कारण ईस कला कमला हिम-भव-सुता जहँ देखो वहीं है ॥

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तामसता नमता ममता कविता कवि कै मन मद्ध गुही है।
कीनो है कञ्चन लोह जगत्र मैं पारस-सूरत जाहि छुही है॥

'हे दुर्गामैया! तीनों लोकोंको तारनेवाली, धरतीका उद्धार करनेवाली, राक्षसोंको मारनेवाली और तीव्र तेज तू ही हो। जगत्का कारण भगवान् विष्णु और उनकी कलाशक्ति कमला और लक्ष्मी भी तू ही हो और जगत्का नाश करनेवाली शिव और शिवा तथा पर्वतपुत्री पार्वती भी तू ही हो। जहाँ देखें, जिधर देखें, सर्वत्र तू ही विराजमान हो। तमोगुण, रजोगुण, सत्त्वगुण—तीनों गुणोंकी गुण-साम्यावस्था, कवि अर्थात् मेरे हृदयकी गुहामें भी तू ही विराजमान हो। तू पारसरूपिणी हो। संसारमें जिसे तू छू लेती हो, उसे ही लोहेसे सोना कर देती हो।

श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने चण्ड-चरित्रके आठवें अध्यायमें देवी भगवतीकी अत्युत्तम स्तुति भुजंगप्रयात छन्दमें २२३ से छन्द-क्रमाङ्क २६१ तक लिखी है, जो संस्कृतकी स्तुतियोंके समान ही श्रेष्ठ है।

महाकवि श्रीहर्षकी शक्ति-उपासना

(श्रीराघवेन्द्र चतुर्वेदी, 'पंकज' ज्योतिषाचार्य, साहित्याचार्य, व्याकरणशास्त्री, एम्० ए०)

संस्कृत-साहित्यके अन्तर्गत रघुवंश, किरातार्जुनीय, कुमारसम्भव, शिशुपालवध और नैषध—ये पञ्च महाकाव्यके नामसे जाने जाते हैं, जो इस महाकाव्य-शृङ्खलामें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। नैषध महाकाव्यके रचयिता सरस्वतीके वरदपुत्र महाकवि 'श्रीहर्ष' थे। इनके पिताश्रीका शुभनाम 'श्रीहीर' एवं जननीका नाम 'नामल्लदेवी' था।

श्रीहीर विशिष्ट कोटिके विद्वान् थे तथा तत्कालीन काशी-कन्नौजनरेश गोविन्दचन्द्रकी राजसभाके प्रधान राजपण्डित थे। कहा जाता है कि एक पण्डितने इन्हें राजाके समक्ष शास्त्रार्थमें पराजित कर दिया। राजसभामें पराजित 'श्रीहीर'ने 'श्रीहर्ष'से कहा—'पुत्र! यदि तुम सुपुत्र हो तो मेरे विजेताको पराजित कर मेरा मनस्ताप दूर करना।' 'श्रीहर्ष'ने भी पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य कर सद्गुरुसे तर्क, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष, वेदान्तादि दर्शन, योगशास्त्र एवं मन्त्रशास्त्रका सम्यक् प्रकारसे अध्ययन किया। फिर 'चिन्तामणि' नामक सारस्वत मन्त्रका अनन्यमनस्क हो एक वर्षतक जप करके प्रत्यक्ष हुई त्रिपुरादेवीके वरदानसे ऐसी विद्वत्ता प्राप्त की कि इनके कथनको कोई भी विद्वान् समझ ही नहीं पाता था। यह देख श्रीहर्षने पुनः आराधना कर त्रिपुरादेवीका साक्षात्कार कर कहा—'माता! आपके द्वारा प्रदत्त वरके फलस्वरूप प्राप्त मेरा प्रखरतम पाण्डित्य भी सदोष ही रहा; क्योंकि मेरे कथनको कोई विद्वान् समझता ही नहीं। अतएव कृपया ऐसा वरदान दीजिये जिससे मेरे कथनको विद्वज्जन समझने लगें।' यह सुनकर त्रिपुराने कहा—'वत्स! आधीरातमें गीले वस्त्रको मस्तकपर लपेटकर तक्र (मट्ठा)का पान करो, जिससे कफ-बाहुल्य होकर बुद्धिमें जड़ता आ जायगी, तब तुम्हारे कथनको विद्वान् लोग समझने लगेंगे।' श्रीहर्षने ऐसा ही किया। तब उनके कथनको विद्वज्जन समझने लगे। तदनन्तर इन्होंने क्रमशः स्थैर्यविचार-प्रकरण, श्रीविजय-प्रशस्ति, खण्डनखण्डखाद्य, नैषधीय चरित महाकाव्य आदि अगाध पाण्डित्यसे पूरित कालजयी ग्रन्थोंकी रचना की।

चिन्तामणि-मन्त्रका स्वरूप

अम्बाऽऽवामार्धे सकलसुभयाकारघटनाद्
द्विधाभूतं रूपं भगवदभिधेयं भवति यत्।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तदन्तर्मन्त्रं मे स्मर हरमयं सेन्दुममलं
निराकारं शश्वज्जप नरपते सिध्यतु स ते ॥
(नैषधचरित १४ । ८५)

मन्त्रपक्ष—आवे (पूर्व) भागमें ओंकार तथा मकारसे तथा उत्तर भागमें ओंकार तथा मकारसे उपलक्षित अर्थात् आदि और अन्तमें 'ओम्' रूप प्रणवसे युक्त, दो अकारोंकी घटना (संयोग) से द्विधाभूत ('ह' 'र' इस प्रकार विभक्त अथवा दोनों आकार अर्थात् प्रणवके सम्पुटीकरणसे दो आकारवाला) शिववाचक (ओं हर ओम् ऐसा) जो रूप होता है, वह 'हर'मय अर्थात् हकार-रेफात्मक ('ह्' 'र' रूप) निराकार अर्थात् दोनों अकारोंसे रहित ('ह्' 'र्' अर्थात् ह=केवल व्यञ्जन हकार रेफयुक्त), ई और इन्दु (चन्द्र अर्थात् गोलाकृति अनुस्वार) से युक्त अर्थात् 'ह्रीं' ऐसे रूपवाला, कलायुक्त अर्थात् 'ह्रीं' इस प्रकार (ॐ ह्रीं ॐ) (मेरे इस मन्त्र 'चिन्तामणि' नामक सारस्वत-मन्त्र) का मानसिक नित्य जप करो। वह 'चिन्तामणि' नामक सारस्वत-मन्त्र तुम्हें सिद्ध हो।

यन्त्रपक्ष—त्रिकोण, दो आकृतियोंकी घटनासे सम्पूर्ण अर्थात् षटकोणस्वरूप और उस (षटकोण)-के बीचमें उक्त मन्त्र (ॐ ह्रीं ॐ) से युक्त मेरे सारस्वत यन्त्रकी नित्य उपासना करो, जिससे वह यन्त्र और मन्त्र तुम्हें सिद्ध हो।

मन्त्रसंयुक्त सारस्वत चिन्तामणि-यन्त्र

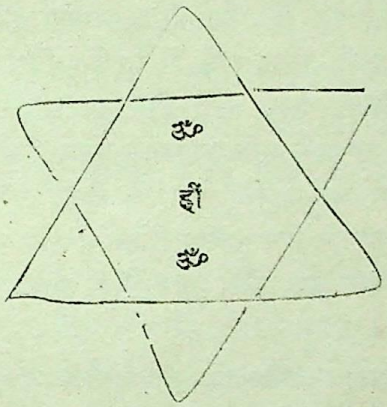

जगद्गुरुशंकराचार्यकृत पराम्बाश्वधाटीस्तोत्रका एक अंश

चेटीभवन्निखिलखेटीकदम्बतरुवाटीषु नाकिपटली-
कोटीरचारुतरकोटीमणीकिरणकोटीकरम्बितपदा ।
पाटीरगन्धकुचशाटी कवित्वपरिपाटीनगाधिपसुता
घोटीकुलादधिकधाटीमुदारमुखवीटीरसेन तनुताम् ॥

कूलतिगामिभयतुलावलिज्वलनकीला निजस्तुतिविधा
कोलाहलक्षपितकालामरी कलशकीलालपोषणनभाः ।
स्थूला कुचे जलदनीला कचे कलितलीला कदम्बविपिने
शूलायुधप्रणतिशीला विभातु हृदि शैलाधिराजतनया ॥

यत्राशयो लगति तत्रागजा वसतु कुत्रापि निस्तुलशुका
सुत्रामकालमुखसत्राशनप्रकरसुत्राणकारिचरणा ।
छत्रानिलातिरयपत्राभिरामगुणमित्रामरीसमवधूः कुत्रा-
सहन्मणिविचित्राकृतिः स्फुरितपुत्रादिदाननिपुणा ॥

द्वैपायनप्रभृतिशापायुधित्रिदिवसोपानधूलिचरणा
पापापहस्वमनुजापानुलीनजनतापापनोदनिपुणा ।
नीपालया सुरभिधूपालका दुरितकूपादुदञ्चयतु मां
रूपाधिका शिखरिभूपालवंशमणिदीपायिता भगवती ॥

यालीभिरात्मतनुताली सकृत्प्रियकपालिषु खेलति भय-
व्यालीनकुल्यसितचूलीभरा चरणधूलीधसन्मुनिवरा ।
बालीभृति श्रवसि तालीदलं वहति यालीकशोभि तिलका
साली करोतु मम काली मनः स्वपदनालीकसेवनविधौ ॥

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाञ्चरात्र-आगम और लक्ष्मी-तन्त्र

(श्रीरामप्यारेजी मिश्र, एम्० ए०)

पाञ्चरात्र-आगम वैष्णवधर्मके सर्वप्राचीन मतोंमें एक है। शक्ति-उपासनाके लिये पाञ्चरात्र-आगमके 'लक्ष्मीतन्त्र'-में विशेषरूपसे विस्तृत निर्देश हुआ है। 'लक्ष्मीतन्त्र'के १७वें अध्यायमें लक्ष्मीदेवी कहती हैं कि मैं नारायणकी आनन्दमयी पराशक्ति हूँ।

गायत्रीके अकारादि वर्णक्रमोंपर आधृत सहस्रनाम आदिके कई भेद हैं। फिर भी इनमें मुख्य शक्तिदेवी श्री, भू, लक्ष्मी, ललिता आदि निर्दिष्ट हैं। जिस प्रकार ईश्वर-संहिताके दसवें पटल और नारदीय संहिताके अट्ठाईसवें अध्यायमें शक्ति-उपासनाके क्रमका उल्लेख है, उसी प्रकार लक्ष्मीतन्त्रके प्रथम और द्वितीय अध्यायोंमें देवीका परमात्माके साथ सम्बन्ध, विभिन्न नामोंकी व्युत्पत्ति और व्याख्या तथा विशेष अवसरोंपर उनकी पूजाके विधान हैं।

वैसे सम्पूर्ण लक्ष्मीतन्त्रमें पूरी दुर्गासप्तशती भी आ गयी है। इसमें पञ्चकाल-प्रक्रिया, शुद्धाध्वा और सृष्टि-क्रमका विस्तारसे उल्लेख है। आठवें अध्यायके अन्तमें देवीके अवतारका प्रकाश, दसवेंमें परव्यूह-प्रकाश, तेरहवेंमें जीवके स्वरूपका विवरण, अठारहवेंमें समस्त मन्त्रोंके रहस्य, उनमें नाद-बिन्दुकी शक्ति, वर्णोंसे मन्त्र-देवताओंका आविर्भाव, मातृकाओंका प्रकाश और उनके जप-ध्यानसे देवताके सांनिध्यकी प्राप्तिका उल्लेख है। इक्कीसवें अध्यायमें दीक्षाके योग्य गुरु-शिष्यके लक्षण एवं शक्तिपातका विधान बतलाया गया है। छब्बीसवें अध्यायतक सात विद्याओंपर प्रकाश डाला गया है। अट्ठाईसवेंमें उपासनाके लिये अभिगमन, इज्या, स्वाध्याय, योगसहित पञ्चकाल-कृत्य-आदि अङ्गोंका निरूपण हुआ है।

यों तो पाञ्चरात्रके सभी तन्त्रोंमें शक्ति-उपासकोंके सदाचारोंका निर्देश है। इसमें भी बतलाया गया है कि शक्तिके उपासकको शीलयुक्त रहकर किसीसे द्रोह, लोभ, क्रोध आदि नहीं करना चाहिये और किसी शास्त्रादिमान्य ग्रन्थोंकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये।

उपासनामें भूतशुद्धि, अङ्गन्यास, अन्तर्याग, बहिर्याग, षोड़शोपचार-पूजन, हवन, लोकपालोंकी पूजा, पितृ-तर्पण और अनुयागका विधान है।

इसके एकतालीसवें अध्यायमें कहा गया है कि दीक्षा, शक्तिपात और अभिषेकसे साधकमें अद्भुत शक्तिका संनिवेश होता है। पैंतालीसवें अध्यायके अनुसार शक्तियोंमें महालक्ष्मी और उनकी सखियाँ—कीर्ति, नया, माया और उनकी अनुचरियोंका विस्तारसे उल्लेख है। अगले अध्यायोंमें उन सभीकी उपासना और श्रीसूक्तकी विशेष महिमा प्रतिपादित है। श्रीसूक्तकी महिमाके विषयमें लिखा है कि जैसे गायोंमें घृत, दुग्ध आदि प्रत्यक्ष महा-शक्ति है, कल्पवृक्षमें सभी कामनाएँ संनिहित हैं, समुद्रमें रत्न हैं एवं ब्राह्मणोंमें तेज, तप तथा विद्या है, वैसे ही श्रीसूक्तकी महिमा अपार है।

इनके आगेके अध्यायोंमें शुद्धतम भाव और उससे देवोपलब्धिकी चर्चा है। देवीकी परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीके रूपमें विश्व-व्याप्तिकी बात कही गयी है (५७ । २)। आगे वसिष्ठ, पराशर, भारतीय ज्ञानगङ्गाके भगीरथ—वेदव्यास, शुक, अरुन्धती, पार्वती, कपिल, हिरण्यगर्भ आदिको शक्ति-उपासनासे प्राप्त लाभोंकी चर्चा है। सबसे अन्तमें एक रूपमें नित्यानवद्य, विश्वरूप, सर्वकारण-कारण, निस्तरङ्ग, शुद्ध-बुद्ध-ज्ञानरूप लक्ष्मी-नारायणकी संयुक्त वन्दना कर ग्रन्थ समाप्त किया गया है, जो इस प्रकार है—

ओं नमो विष्णुपत्न्यै च यस्या नारायणः प्रियः।
नमो नित्यानवद्याय जगतः सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने॥
(लक्ष्मीतन्त्र ५७ । ५५)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

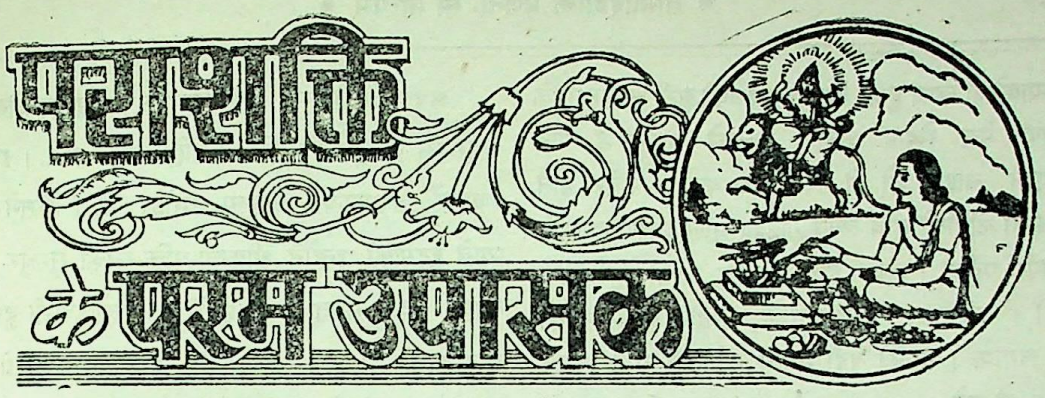

विशालाक्षी-प्रेरित श्रीकृष्णभक्त चण्डीदास

[वंगभूमि शाक्त-साधनाकी अतिशय विशिष्ट भूमि रही है। विशेषकर बहुत पहले जब बंगलादेश, असम, बिहार, उड़ीसा, त्रिपुरा आदि प्रदेश भी महाबंगमें सम्मिलित थे। त्रिपुरा नाम तो साक्षात् त्रिपुरा देवीपर ही आधृत है। अनेक सिद्ध उपासकों और संतोंकी यह जन्मभूमि रही है। यदि कहा जाय कि बंगीय-चरित्र मातृ-उपासनापरक ही है, तो वह अत्युक्ति न होगी। यहाँ कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध भक्तों, शक्ति-उपासकों और संतोंके चरित्र दिये जा रहे हैं।—सम्पादक]

भारतमें श्रीकृष्ण-भक्तोंमें चण्डीदासका नाम मुख्य है, पर ये मूलतः शाक्त थे और इन्होंने माता विशालाक्षी-की आज्ञा और प्रेरणासे श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार-प्रसार किया था। इनका जन्म लगभग वि० सं० १४६०में वीरभूमि जिलेके नान्नूर ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम दुर्गादास बागची था। ये जातिके ब्राह्मण और विशालाक्षी देवीके पुजारी थे। माता-पिताके असमयमें कालकवलित हो जानेके बाद बालक चण्डीदास निराश्रय हो गये। इनका विद्यार्जन ठप पड़ गया और शैशवमें ही इनपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। कुछ बड़े होनेपर गाँवके अन्य स्वजन-ब्राह्मणोंने इनका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया और वे अपने पिताके स्थानपर विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें पुजारी हो गये।

कहा जाता है, कुछ दिनोंतक तान्त्रिक उपासना करनेपर इन्हें भगवती विशालाक्षीकी मूर्तिमें श्रीकृष्णके श्रीविग्रहके दर्शन हुए और इनके हृदयमें श्रीकृष्ण-भक्तिका समुद्र उमड़ आया। पश्चात् भगवतीद्वारा भेजी गयी एक डाकिनीसे इन्हें संदेश और आज्ञा मिली कि वे श्रीकृष्ण-लीलाका प्रचार-प्रसार करें। यह एक प्रकारसे साक्षात् सरस्वतीकी प्रेरणा थी। फलस्वरूप चण्डीदासके भीतरकी काव्य और गायनकी प्रतिभाको परम प्रकाश मिल गया। वे पदरचना और गायनमें गन्धर्वोंको भी पीछे छोड़ चुके थे। इनके पद-गायन और लीला-वर्णनोंको सुनकर जनता आत्म-विभोर होने लगी।

चण्डीदासपर कुछ नासमझ लोगोंने दोषारोपण भी किया। फलस्वरूप ये पुजारी-पदसे हटा दिये गये, किंतु इन्हें इसकी चिन्ता न थी। ये गाँवके बाहर एक झोपड़ीमें शान्त, किंतु भौतिक दृष्टिसे अत्यन्त विपन्न जीवन यापित करने लगे। वहाँ इनकी भोजनादिकी व्यवस्था भी पूरी न हो पाती थी। एक बार तो ये भिक्षाटनमें कुछ भी प्राप्त न होनेसे क्षुधा-पीड़ासे लगभग मरणासन्न हो गये। जब मिथ्या लोकापवादके चलते रहनेसे ये घृणाके पात्र हो गये, तब इन्होंने निश्चय कर लिया कि अब गाँव ही छोड़ देंगे।

गाँवके लोग तो पराङ्मुख थे ही, किंतु दयामयी भगवती विशालाक्षीको यह सह्य न था। उसी रात गाँवके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुखियाको यों स्वप्न हुआ कि 'तुमलोगोंकी झूठी आरोपबुद्धिके कारण मेरा सेवक अन्यत्र जानेको प्रस्तुत है, यदि कल्याण चाहते हो तो उसे प्रसन्न करो।' सवेरा होते ही सभी लोगोंको साथ लेकर गाँवका मुखिया चण्डीदासकी कुटीपर पहुँचा। सबने हाथ जोड़कर चण्डीदाससे क्षमा माँगी। चण्डीदास महान् संत थे, उन्होंने प्रेमसे सबको गले लगाया। सबको बड़ी ग्लानि हुई और सभी उनके शिष्य हो गये।

अब चण्डीदास निर्विघ्नरूपसे श्रीकृष्ण-लीलाका मधुर-रस सम्पूर्ण बंगभूमिमें प्रवाहित करने लगे। इनकी रचनाएँ बंगभाषाकी अमूल्य धरोहर हैं। कितने ही प्यासे हृदयोंको इन्होंने श्रीकृष्ण-भक्ति-रसका सुमधुर पान कराया। शक-संवत् १५३४ में ये गोलोकवासी हुए। वृन्दावनधाममें आज भी इनकी समाधि भक्तोंको प्रेरणा प्रदान कर रही है।

शक्ति-साधक महाकवि रामप्रसाद

चण्डीदासकी ही तरह शाक्त-कवि रामप्रसादकी वाणी बंग-भूमिकी अमूल्य धरोहर है। ये जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े तान्त्रिक साधक भी थे। आपका जन्म हालीशहरके पास कुमारहट्ट नामक गाँवमें वि० सं० १७८०के आस-पास एक वैद्य-परिवारमें हुआ था। इन्हें बचपनमें ही संस्कृत और फारसीकी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त हुई थी। बाईस वर्षकी अवस्थामें इनका विवाह हो गया। तभी इनकी रुचि तान्त्रिक साधनामें हुई और आप एक योग्य गुरुसे दीक्षा लेकर साधना-उपासनामें लग गये। कुछ ही समय बाद आपके पिताका स्वर्गवास हो गया और समस्त परिवारके भरण-पोषणका दायित्व आपके कंधोंपर आ पड़ा। कोई स्थायी सम्पत्ति न होनेके कारण आपको नौकरी करनेके लिये कलकत्ता जाना पड़ा। वहाँ आप एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके यहाँ मुनीमी करने लगे, पर जगज्जननीकी इच्छा और प्रेरणा कुछ और ही थी। इनका मन बहीखातेमें न लगता था। कभी-कभी खातेकी जगहपर भगवतीके नाम, गुण आदि ही लिखने लगते। अन्य कर्मचारियोंने मालिकसे इनकी शिकायत कर दी। उदारमना स्वामीने क्रुद्ध होनेकी जगह इन्हें जन्मभर तीस रुपये मासिक देनेकी अनुशंसाके साथ घर वापस भेज दिया।

घर जाकर रामप्रसादजी काली-साधनामें लग गये। पंद्रह वर्षोंतक निरन्तर साधना करके इन्होंने साधक-जीवनकी सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली। इन्हें कालीमें ही राम, कृष्ण, शिव, विष्णु—सबके दर्शन होने लगे। भीतरसे समस्त भेद-भाव जाते रहे। उस समयका इनका एक उद्बोधन-गीत है—

मन करो ना द्वेष-द्वेषि, यदि होबि रे बैकुण्ठबासी।
आमि वेदागम पुराण करिलाम कत खोंज-तालासी।
ऐ ये काली, कृष्ण, शिव, राम, सकल आमार एलोकेशी।
शिवरूपे धर सिंगा, कृष्णरूपे बाजाओ बाँशी।
ओ माँ! रामरूपे धर धनु, कालीरूपे करे असि॥

अबतक रामप्रसादकी साधनाका पर्याप्त प्रचार हो गया था। कृष्णनगरके महाराजाने इन्हें अपने दरबारमें रखना चाहा, पर सच्चे दरबारके दरबारी रामप्रसादको यह प्रस्ताव स्वीकार न हुआ। फिर भी राजाकी कृपा उनपर बनी रही और उन्हें सौ बीघा जमीन माफीके रूपमें प्राप्त हुई।

इन्हीं दिनों भक्तकवि रामप्रसादकी माताजी स्वर्गवासी हो गयीं। माँकी मृत्युके बाद रामप्रसादजी उत्कट साधनामें लग गये। वे श्मशानमें जाकर शवसाधनामें प्रवृत्त हुए। कालीने अनेक भयानक रूप भी दिखाये, पर भक्त अविचल बने रहे। अन्तमें साधना सफल हुई और पराम्बाने साक्षात् अपने श्रीदर्शनसे इन्हें कृतकृत्य कर दिया।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्तकवि रामप्रसादजीने प्रायः एक लक्ष अमृतमय पदोंकी रचना की होगी। शाक्त भक्त-कवियोंमें इनका नाम अमर है। इनके विषयमें बंगाल प्रदेशमें अनेक लोक-कथाएँ प्रचलित हैं।

बहत्तर वर्षकी आयुमें कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन इन्होंने विधिवत् मातृ-पूजा की और अमावस्याकी रात बीतनेपर प्रतिमा-विसर्जनकी वेलामें अपनी साध्वी पत्नी शर्वाणीसे कहा—'देखो शर्वाणी! आज हमलोगोंका शेष दिन है। चलो, माताका अनुगमन करें।' यह कहकर प्रतिमाके साथ ही वे नदी-तटकी ओर चल पड़े। जैसे-जैसे नदी निकट आने लगी तैसे-तैसे इनके कण्ठसे अपूर्व स्वरलहरी निकलने लगी। मार्मिक स्वरलहरीसे पशु-पक्षीतक स्तब्ध-से रह गये। नदी-तटपर पहुँचनेपर ये गलेभर पानीमें जाकर खड़े हो गये। शर्वाणीने भी इनका अनुकरण किया, दोनोंने दोनोंको एकटक देखा। भक्त रामप्रसादके मस्तकसे एक ज्योति निकली और दोनों सदाके लिये जगदम्बाकी गोदमें विलीन हो गये।

कालीके अनन्य भक्त सिद्ध कवि कमलाकान्त

साधक कमलाकान्तका जन्म वि० सं० १८३० में बर्दवान जिलेके अम्बिका-काळना नामक ग्राममें हुआ था। बचपनमें ही पिताने उनके हृदयमें धर्मके बीज बो दिये थे। कालान्तरमें इन बीजोंको मातृभावकी पुष्टि मिली और ये देवीकी-साधनामें लग गये। इनकी विनम्रता-पूर्ण आचरण-पद्धति और देवीपरक काव्यरचना-शक्तिकी बंगभूमिमें बड़ी ख्याति है।

कमलाकान्त सिद्ध कवि भी थे। वे स्वयं भजन बनाकर माँके सामने गाया करते। अनुरोध करनेपर वे तत्क्षण पद-रचना करनेमें सिद्धहस्त थे। रचना और गायिकी दोनोंमें इन्हें विलक्षण सिद्धि प्राप्त थी। इनके पदोंमें सुर-ताल स्वाभाविक विद्यमान रहते थे। धीरे-धीरे इनकी ख्याति तत्कालीन बर्दवान-नरेशतक पहुँची। महाराजने इन्हें अपने दरबारमें बुला भेजा। इनके पद सुने और वे आजीवन इनके अनुगत हो गये। महाराजने न केवल इन्हें राजकीय सम्मान दिया, अपितु अपना गुरु भी बना लिया। इनके लिये उन्होंने कोठालहाट नामक गाँवमें एक सुन्दर-सा भवन भी बनवा दिया, जहाँ रहकर कमलाकान्तजी साधना करते थे। इन्हें राजकीय मासिक वृत्ति मिलती रही।

कमलाकान्त गृहस्थ संत थे, पर उनकी साधना अत्यन्त उच्चस्तरकी थी। आगे चलकर इन्हींके स्थानपर महाराजकी प्रेरणासे कालीपूजा-समारोह होने लगा। महाराज विशेष पर्वोंपर स्वयं पधारते, दीन-दुखियोंको अन्न, वस्त्र आदिका दान करते और कमलाकान्तजीके साधक-चरित्रसे प्रेरणा लेते। उस समय आस-पासके लोग आबाल-वृद्ध सभी पधारते और जगज्जननी माँकी भक्ति-प्रेरणासे भरकर घर लौट जाते।

साधारणतया लोग कामिनी-काञ्चनको साधन-मार्गमें बाधा समझते हैं; किंतु कमलाकान्तजीकी मान्यता रही कि सती-साध्वी स्त्री संसारमें साधन और भजनके पथमें सहायक ही होती है, कभी विघ्नकारिणी नहीं। उनके विचार थे—'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु' अर्थात् साध्वी रमणीमात्र उसी महाशक्तिस्वरूपा देवी जगदम्बासे प्रादुर्भूत हैं। वे जलमें कमलके समान संसारी होते हुए भी संसारसे निर्लिप्त थे।

कमलाकान्त कालीके अनन्य भक्त थे। मरते दमतक इन्होंने कालीके सिवा अन्य किसी देवी-देवताकी पूजा-अर्चा नहीं की।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीरामकृष्ण परमहंस

१७ फरवरी १८३८ ई०को पश्चिम बंगालके हुगली जिलान्तर्गत उत्तर-पश्चिमांशमें कामारपुकुर ग्राममें खुदीराम चट्टोपाध्यायके पुत्ररूपमें श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंसने जन्म ग्रहण किया। इनका बचपनका नाम गदाधर था। बाल्यावस्थासे ही गदाधर ईश्वरीय समीक्षा एवं साधु-संगतिमें रुचि रखते और घरपर रघुबीरकी पूजा किया करते। घरके निकट ही अतिथिशालामें साधुओंका आवागमन होता तो वे वहाँ साधुओंकी संगति एवं सेवा करने चले जाते, दत्तचित्त होकर पुराण, भागवत आदिके पाठ सुनते एवं उन्हें हृदयङ्गम करते।

बाल्यकालमें ही रामकृष्ण (गदाधर)में एक अलौकिक भाव दिखायी पड़ने लगा। कभी-कभी इन्हें अद्भुत ज्योति-दर्शनसे भाव-समाधि लग जाती। सत्रह-अठारह वर्षकी आयुमें आप ज्येष्ठ भ्राताके साथ कलकत्ता आये और चार वर्षके पश्चात् दक्षिणेश्वरके भवतारिणी-मन्दिरमें पूजा-कार्यमें नियुक्त हो गये, जिसे पहले उनके भाई करते थे।

साधना एवं प्रार्थनामें मग्न श्रीरामकृष्ण कभी रोते तो कभी हँसते ही रहते। मन संसारमें पुनः प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टासे घरवालोंने इनका विवाह लघुवयस्का शारदादेवीसे करा दिया, किंतु इस मायिक विस्तारका इनपर कोई प्रभाव न पड़ा। शारदादेवी स्वयं उच्चस्तरके पूर्वसंस्कारोंसे सम्पन्न थीं। उन्होंने श्रीरामकृष्णको इस दिशामें प्रोत्साहित ही किया और अन्तमें वे स्वयं इनकी शिष्या बन गयीं।

श्रीरामकृष्ण कभी-कभी मातृत्वके दर्शनके लिये आकुल हो विलाप करने लगते, कभी उन्मत्त बालककी भाँति आचरण करते, तो कभी यज्ञोपवीतका परित्याग कर अष्टपाश-मुक्त बनकर पंचवटीके वृक्षके मूलमें ध्यानमग्न हो अपने प्रति पूर्ण उदासीन हो जाते। कभी पूजा करते समय ही ध्यानमग्न हो जाते। आरतीके समय उनकी आरती-क्रिया कभी पूर्ण नहीं होती और चैतन्यविहीन हाथ घंटों उसी तरह चलता रहता। कभी-कभी शिवलिङ्गकी ओर चित्रार्पितकी तरह एकटक निहारते रहते और फिर गद्गद होकर महिम्नःस्तोत्रका पाठ किया करते।

समयके प्रवाहमें रामकृष्णकी उन्मादावस्था और बढ़ती गयी। एक दिन यह सोचकर कि इतना पुकारने-पर भी माँका दर्शन नहीं मिलता तो व्यर्थ ही यह जीवन रखनेसे क्या लाभ है, खड्ग लेकर वे माँके चरणोंमें आत्म-बलि देनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उसी मुहूर्तमें इनके मनमें एक आश्चर्यमयी अनुभूति जाग्रत् हुई। ज्योतिर्मयीरूपमें माँने दर्शन दिया। रामकृष्णने देखा—घर-मन्दिर सभी मानो महाशून्यमें मिलकर एक अन्तहीन ज्योति-तरङ्गरूपमें उनके हृदयपर उमड़ा आ रहा है। वे 'माँ! माँ!!' कहकर अचेत हो गये।

अदर्शन ही अच्छा था, चकित-दर्शनमें तो दिव्य उन्माद और उमड़ उठा। पूर्ण दर्शनकी व्याकुलताने अब उन्हें और भी आकुल कर दिया। वे अविरत केवल माँ-माँ कहकर रोने लगे। अब माँकी पूजा भी वे विधिपूर्वक सम्पन्न नहीं कर पाते थे, कहाँ पुष्प-चन्दन और कहाँ आरती! वे वेदनामें केवल 'हा-हा' और हृदयविदारक 'माँ! माँ!!' का आर्तनाद करते रहते। कभी शिशुके समान नाचना आरम्भ कर देते तो कभी भोग-सामग्रीका माँके श्रीमुखसे स्पर्श कराते तो कभी भोग-वस्तु पहले अपने मुँहमें लेकर पुनः उच्छिष्ट माँके मुँहमें डाल देते। एक दिन मन्दिरमें एक बिडालके प्रवेश करनेपर उन्होंने उसीके मुँहमें भोग वस्तु-डाल दी।

श्रीरामकृष्णके अन्तरमें दास्यभावके पूर्णरूपमें उदित हो जानेपर एक दिन पञ्चवटीमें ही एक ज्योतिर्मयी नारी-मूर्ति उनकी आँखोंके समक्ष उद्भासित हो उठी। तभी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हठात् कहींसे हनुमान्‌जी आकर उस मूर्तिके चरणोंमें लेट गये। रामकृष्णने उस समय पहचान लिया कि ये तो सीताजी हैं। वे 'माँ-माँ' कहकर उनके चरणोंमें स्वयंको समर्पित करनेके लिये ज्यों ही अग्रसर हुए कि वह नारी-मूर्ति रामकृष्णके शरीरमें विलीन हो गयी।

अब रामकृष्णके अन्तरमें षोडशी-पूजा करनेकी नयी भावना जाग्रत् हुई। उन्होंने बंगाब्द १२८० के १३ ज्येष्ठको एक रहस्यमयी रात्रिमें फलाहारिणी कालिका-पूजाका आयोजन किया। रामकृष्ण भाव-विभोर हो मातृ-प्रेममें तन्मय थे। शारदामणि शान्त-भावसे वहाँ उपस्थित थीं। रामकृष्णने उन्हें इशारेसे अपने दक्षिण भागके पूजा-आसनको ग्रहण करनेके लिये कहा। उनके संकेतपर शारदादेवी उस सुसज्जित आसनपर बैठीं। पूज्य शारदा-देवी और पुजारी श्रीरामकृष्णने माँके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि और भोग समर्पित किया, तथा पूजाके अन्तमें स्वयंको भी निवेदित कर दिया।

इस षोडशी-पूजाके बाद ही रामकृष्णका साधनामय जीवन पूर्ण हुआ। श्रीरामकृष्ण परमहंसने केवल शक्ति-साधनामें ही मोक्ष-लाभ किया, ऐसा नहीं; उन्होंने शैव तथा वैष्णव धर्मके सख्य, दास्य, मधुर आदि प्रत्येक भावकी साधनामें सिद्धि प्राप्त की थी। उन्होंने निराकार वेदान्तमत-की साधनामें भी सिद्धि-लाभ किया था। वे सर्वधर्म-समन्वयकारी थे। वस्तुतः वे यह प्रत्यक्ष समझ पाये थे कि सभी धर्म एक हैं। साधनाके पथ अलग-अलग होते हुए भी, पर गन्तव्य स्थल सबका एक ही है।

—सुश्री निवेदिता चौधरी

त्रिकालज्ञ मुनि वामा क्षेपा

बंगाल-प्रान्तके वीरभूमि जिलेमें 'तारापीठ' नामक तारादेवीका प्रसिद्ध शक्तिपीठ है। वहाँ सर्वदानन्द चट्टोपाध्याय नामके एक नैष्ठिक ब्राह्मण रहा करते थे। उनके दो पुत्र थे—वामाचरण और रामचन्द्र। वामाचरण ही आगे चलकर 'वामा क्षेपा'के नामसे विख्यात हुए।

वामाचरणका जन्म वि० सं० १८९१में हुआ था। इनका मन पढ़ने-लिखनेमें नहीं लगता था। प्रायः खेलनेमें इनकी रुचि अधिक थी। खेल-खेलमें भी ये देवी-देवताओंकी मूर्तियाँ ही बनाया करते और उनकी पूजा करते थे। यही इनका प्रिय खेल था। बचपन अभी बीता भी न था कि इनके पिताका असमयमें निधन हो गया। घरमें खास सम्पत्ति न थी, पर बालक वामाचरणको माँ कालीका ही अटल भरोसा था। माँके बार-बार उकसाने-पर भी ये कमाई करनेकी दिशामें अग्रसर न हुए, अपितु अनन्यभावसे तारादेवीकी भक्तिमें प्राणपणसे जुट गये।

एक दिन इनकी माँने जोर देकर कहा कि 'तुम कुछ अर्थोपार्जन अवश्य करो, अन्यथा घरका खर्च कैसे चलेगा।' माताका आदेश पाकर ये पासके ही एक मन्दिरमें पुष्पादि चयनकर्ताके रूपमें सेवक बन गये। बादमें जब इन्होंने देखा कि उक्त मन्दिरका पुजारी वास्तविक भक्तिमें रुचि नहीं लेता तो इन्होंने ऐसे स्थानपर सेवा करना पसंद नहीं किया। फिर ये नौकरीकी खोजमें जगह-जगह भटके, पर अपढ़ होनेके कारण इन्हें कोई नौकरी नहीं मिल सकी। लाचारीवश उत्पन्न हुई इनकी अस्तव्यस्तताको देखकर गाँववाले इन्हें 'क्षेपा' (पागल) कहने लगे। इसीसे आगे चलकर इनका नाम 'वामा क्षेपा' पड़ गया।

तारापुरमें उन दिनों मोक्षानन्द नामक एक अधिकारी शक्ति-भक्त पीठके महन्त थे। उनका ध्यान वामा क्षेपापर गया और उन्होंने इन्हें अपना सहायक बना लिया। मोक्षानन्दके देहावसानके बाद वामा तारा-पीठके महन्त बन गये। फिर तो इन्हें जन्म-जन्मान्तर-का तारा-भक्तिके लिये अपेक्षित अवसर प्राप्त हो गया।

वामा क्षेपा सिद्ध महात्मा थे। यद्यपि ये कुछ पढ़े-लिखे तो न थे, तथापि शास्त्र इनके भीतर प्रकट था। माँकी

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृपासे ये त्रिकालज्ञ मुनि हो गये थे। लोगोंके भीतरकी बातें जान लेना, अलौकिक करनी कर दिखाना इनकी जीवन-लीलाका सहज स्वरूप था। ये अपनी अलौकिक शक्तियोंसे प्रायः लोककल्याण ही किया करते। इनकी सिद्धियोंकी चर्चाके अनेक प्रसङ्ग आज भी बंगालमें बहुजन-समाजमें प्रचलित हैं।

वामा क्षेपाके लीला-संवरणकी घटना भी अत्यन्त चमत्कारी है। मृत्युके दिन इन्होंने अपने मन्दिरके कतिपय व्यक्तियोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग मुझे श्मशान ले चल रहे हो न ?' लोगोंने ध्यान नहीं दिया और वे माता श्रीताराके सम्मुख ही आसन लगाकर समाधिस्थ हो गये। दूसरे दिन लोगोंने देखा कि वामा क्षेपा उसी तरह योगासन लगाये बैठे हैं, पर उनके शरीरमें कहीं कोई चेतनता शेष नहीं है।

सिद्ध तत्त्वदर्शी महात्मा तैलङ्गस्वामी

[इनके आगे महामाया महाकाली प्रसन्न होकर नाचती थीं !]

सिद्ध महात्मा तैलङ्गस्वामीके अनुगृहीत-स्निग्ध शिष्य, चारों वेदोंके विद्वान्, आहिताग्नि स्वर्गीय रामशास्त्री रंटाटेजी-का कथन है कि 'गुरुदेव तैलङ्गस्वामीके सामने महामाया महाकाली प्रसन्न होकर नृत्य किया करती थीं, जिसकी कुछ झलक गुरुदेवकी कृपासे मुझे भी प्राप्त हो सकी।' आज भी काशीमें उनकी प्रस्तर-मूर्तिके पीछे महाकाली विग्रहरूपमें विराज रही हैं।

महामाया महाकालीकी दक्षिणमार्गीय कठोर साधना करके तैलङ्गस्वामी एक तत्त्वदर्शी महात्मा हो गये और कालविजयी होकर दो सौ अस्सी वर्षोंतक जीवित रहे और अन्तमें अपने सेवकों, शिष्यों और भक्तोंको अपने महा-प्रयाणकी पूर्व-सूचना देकर संवत् १९४४ वि० पौषशुक्ल एकादशी (सन् १८८७ ई०) के दिन सायंकाल मुक्ति-की जन्मभूमि काशीपुरीमें पाञ्चभौतिक देह त्यागकर परम-पदारूढ हो गये।

महामाया महाकालीके सिद्ध उपासक होनेके साथ ही तैलङ्ग स्वामी अद्वैत-वेदान्तदर्शनके प्रखर विद्वान् और ब्रह्मसाक्षात्कारी विभूति थे। इसकी साक्ष्य उनके द्वारा रचित एकमात्र संस्कृत वेदान्तग्रन्थ 'महावाक्यरत्नावली' देता है, जिसमें उन्होंने निम्नलिखित १६ वाक्योंपर अनुभूत मार्मिक प्रकाश डाला है—१—बन्ध-मोक्ष-वाक्य, २—विद्वल्लिङ्ग-वाक्य, ३—उपदेश-वाक्य, ४—जीवब्रह्मैक्य-वाक्य, ५—मनन-वाक्य, ६—जीवन्मुक्त-वाक्य, ७—स्वानु-भूति-वाक्य, ८—समाधि-वाक्य, ९—अष्टस्वरूप-वाक्य, १०—पुलिङ्गस्वरूप-वाक्य, ११—स्त्रीलिङ्गस्वरूप-वाक्य, १२—नपुंसकलिङ्गस्वरूप-वाक्य, १३—आत्मस्वरूप-वाक्य, १४—अवशिष्ट-वाक्य, १५—फल-वाक्य और १६—विदेह-वाक्य।

तैलङ्गस्वामीका सर्वप्रथम संक्षिप्त जीवनचरित्र उनके परमपदारूढ होनेसे चौदह वर्ष पश्चात् सन् १९०१ ई०-में माधवप्रसादजी मिश्रने अपने द्वारा सम्पादित 'सुदर्शन' पत्रमें प्रकाशित किया था। मिश्रजी लिखते हैं कि 'स्वामीजीने अपने धर्मोपदेशसे अनेक दुराचारी पुरुषोंको सदाचारमें प्रवृत्त किया। उनका अव्यर्थ उपदेश जिसने एक वार सुना-समझा, उसीका कल्याण हुआ। स्वामीजीद्वारा रचित 'महावाक्यरत्नावली' एक उपदेशपूर्ण संस्कृत-ग्रन्थ है, जिसमें उनका अपरिमेय शास्त्रज्ञान और भगवद्भक्ति स्थान-स्थानपर प्रतिबिम्बित होती है।'

पूज्य स्वामीजीके निकट श्रीउमाचरण मुखोपाध्याय नामक एक बंगीय महाशय पूर्वजन्म-सम्बन्धी अपनी कतिपय शङ्काओंके समाधानार्थ तीन महीने नौकरीसे छुट्टी लेकर आये और कठोर परीक्षाके पश्चात् वे स्वामीजी-के चरणोंमें स्नेहपूर्ण स्थान प्राप्त करनेमें सफल हुए। स्वामीजीने उन्हें दीक्षा दी और हिंदीमें अपने कुछ उपदेश भी लिखवा दिये। उमाचरण बाबूने उनका

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बंगानुवाद कर प्रकाशित करवाया और राजस्थान (जसरापुरा खेतड़ी) के अध्यात्म-पथके पथिक एक अधिकारी झाबरमल्ल शर्माने स्वामीजीके वचनोंके उस बंगानुवादका हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत किया, जो 'आत्म-विज्ञान-शिक्षा' नामसे भिवानी (हरियाना)से प्रकाशित है। उक्त ग्रन्थमें पूज्य तैलङ्गस्वामीजीकी संक्षिप्त जीवनीके अतिरिक्त निम्नलिखित विषयोंपर स्वामीजीके बहुमूल्य उपदेश संकलित हैं—१–ईश्वर, २–सृष्टि, ३–संसार, ४–चित्तशुद्धि, ५–आत्मविज्ञान, ६–उपासना, ७–परलोक-विचार, ८–तन्मयत्व और ९–तत्त्वज्ञान।

प्राप्त जानकारीके अनुसार विजना जिलेके 'होलिया' नगरके एक विख्यात विद्वान् और सम्पन्न जमींदार श्रीनृसिंहधर नामक तैलङ्ग (आन्ध्र) ब्राह्मणकी प्रथम पत्नी श्रीमती विद्यावतीकी दक्षिणकुक्षिको तैलङ्गस्वामीने अपने आविर्भावसे अलङ्कृत किया था। इनका घरका नाम 'त्रैलिङ्गधर' था। इन्होंने शास्त्र-शिक्षा पितासे ही पायी और विरक्ति तथा एकान्तनिष्ठा छायाकी तरह इनके साथ चलती रही, जिसे पल्लवित-पुष्पित करनेमें इनकी माता विद्यावती विशेष सहायक बनीं। अतएव विवाहके प्राकृत बन्धनसे सर्वथा अछूते रहकर माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् त्रैलिङ्गधरने अपने वैमात्रेय बन्धु (विमाताके पुत्र) श्रीधरको घरकी सारी सम्पदा सौंप दी और स्वयं श्मशानमें डेरा जमाकर अन्तिम साधनाके लिये बैठ गये। बीस वर्षोंतक ये वहीं बैठे रह गये।

साधनाकी परिसमाप्तिके कुछ दिन पूर्व भाई श्रीधर-द्वारा बनवायी हुई त्रैलिङ्गधरकी श्मशानस्थित कुटियामें पटियाला-राज्यके 'बस्तर' नामक गाँवके सिद्ध महात्मा श्रीभागीरथस्वामी आ पहुँचे। कुछ दिनोंतक उनके साथ रहनेके बाद स्वामीजी उन्हींके साथ पुष्करराज चले गये। वहीं त्रैलिङ्गधरने उनसे संन्यास-दीक्षा ग्रहण कर ली। चतुर्थाश्रममें त्रैलिङ्गधर 'गणपतिस्वामी' बन गये, किंतु लोगोंमें वे 'तैलङ्गस्वामी'के नामसे ही विख्यात थे। गुरु स्वामीके ब्रह्मलीन होते ही तैलङ्गस्वामी तीर्थ-यात्राके लिये निकल पड़े। यात्रा-कालमें आप सेतुबन्ध रामेश्वर, सुदामापुरी, नेपालके घोर अरण्य, तिब्बतके पहाड़ी प्रदेश, मानसरोवरके एकान्त स्थानोंमें रहकर योगसाधना और भगवतीकी आराधना-उपासना करते रहे। वहाँसे लौटकर आप कुछ दिनोंतक दक्षिणमें नर्मदातटवर्ती मार्कण्डेय-आश्रममें भी साधनामें रत रहे। पराम्बा भगवतीकी कृपा और योगाभ्याससे उस समयतक आपमें इतनी सामर्थ्य अर्जित हो चुकी थी कि आप जहाँ भी रहते, जन्मजात परदुःखकातरतावश आपके द्वारा अनेक अद्भुत चमत्कार सहज बन जाते थे, जिससे इनका निकट जनसम्पर्क बढ़ने लगता था। यही कारण है कि एकान्त साधनामें अटूट रुचि रखनेवाले तैलङ्गस्वामी तुरंत वह स्थान त्यागकर अन्यत्र निकल जाते थे। उपर्युक्त विभिन्न स्थानोंकी यात्राका एक यह भी रहस्य था।

नर्मदा-तटसे स्वामीजी प्रयाग आये। यहाँ भी प्रचार-की व्याधि उनके पीछे लगने लगी तो आपने मुक्तिपुरी काशीमें ही निवास करना उचित समझा और काशीमें भी तुलसीदासका बाग, तुलसीघाट, लोलार्ककुण्ड, वेदव्यास-आश्रम, हनूमानघाट, दशाश्वमेध-घाट आदि स्थानोंपर निवास करते हुए अन्ततः पञ्चगङ्गाघाटपर बिन्दुमाधव भगवान्के निकट आसन डाल दिया और वहीं परम पदारूढ हो गये।

अब स्वामीजी अवधूत बन चुके थे। उनके अन्तरमें उच्च-निम्न, पात्र-अपात्रका किञ्चित् भी भेद स्थान न पाता था। किसीने खानेको दिया तो खा लिया और कभी एक सेरसे एक मनतक भी खाकर दिखा दिया; अन्यथा महीनों भूखे ही रह जाते या दुग्धाहार अथवा मात्र फलाहार ही लिया करते। उनकी ख्याति सुनकर अनेकों

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बड़े-बड़े श्रीमान् उनके दर्शनार्थ आते और बहुमूल्य वस्तुएँ समर्पित कर जाया करते, किंतु स्वामीजी उनकी ओर कभी आँख उठाकर भी न देखते थे।

स्वामीजीके अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं—रामेश्वर-यात्रामें आपने एक सद्यःमृत ब्राह्मणके मुखमें और मस्तक-पर कमण्डलुका जल छिड़ककर उसे जीवित कर दिया था। सुदामापुरीमें एक वन्ध्या ब्राह्मणीको पुत्र लाभ करा दिया था। नेपाल-यात्रामें शिकारके लिये सिंहके पीछे दौड़ते सेनापतिको सेनासे परावृतकर अपना शिष्य बना लिया था। प्रयागमें घनघोर वर्षामें नदीमें डूबी नौकाको तटपर ही खड़े रहकर ऊपर उठाकर बंगाली ब्राह्मण रामतारण भट्टाचार्य सहित अनेक लोगोंको उबारा और उबरकर आये हुए नौकासे उतरते लोगोंको अपनी छबि भी दिखला दी। उनके शारीरिक बलका जीता-जागता प्रमाण उनके समाधिस्थलपर प्रतिष्ठित विशालकाय सैकड़ों मनका वह शिवलिङ्ग है, जिसका गङ्गामें स्नान करते समय पैरोंसे स्पर्श होनेपर उसे उठाकर उन्होंने यहाँ लाकर स्थापित कर दिया था। गङ्गाके जलपर पद्मासन लगाकर नियमित तैरते रहना तो उनका एक अभ्यास ही बन गया था।

पञ्चगङ्गाघाटपर आनेपर स्वामीजीने मौन ग्रहण कर लिया था। उनके आवासीय मन्दिरमें मङ्गलदास ठाकुर नामक एक महाराष्ट्रीय सज्जन तथा उसका परिवार उनकी सेवा करता रहा। मङ्गलदास स्वामीजीका संकेत ठीक-ठीक समझ लेता था और तदनुसार उसकी व्यवस्था भी किया करता था। आज अनेक बंगीय बन्धु और अन्य जातीय भावुक भक्त भी भारी संख्यामें उनकी समाधिके दर्शनार्थ पहुँचकर उनकी प्रस्तर-प्रतिमाका पूजन-अर्चन कर कृतकृत्य होते हैं।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

महामनीषी साधक महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथ कविराज भारतीय साधना तथा मनीषाके अन्यतम विद्वान् थे। आपमें साधना और दार्शनिक प्रतिभाका जितना सुन्दर समन्वय मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

ज्ञानकी अदम्य पिपासा, साधनाकी अनवरत लगन, शास्त्रोंके आप्त वचनोंका प्रत्यक्षीकरण और गूढ़तम पारिभाषिक शब्दावलियोंकी सरल परिभाषा कविराजजीकी अपनी विशेषता थी। कविराजजीके जीवनका परम लक्ष्य था महाशक्ति और गुरु-शक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव। वे अपने सम्पूर्ण जीवनको महाशक्तिका लीला-विलास मानते थे। यही कारण है कि शारीरिक पीड़ाके दिनोंमें भी उनके चेहरेपर वही कान्ति थी जो पूर्वमें रहा करती थी।

कविराजजीका जन्म ७ सितम्बर १८८७ को पूर्व बंगमें धामराई ग्राममें और तिरोधान १२ जून १९७६ को आषाढ़की पूर्णिमाको काशीमें हुआ। सन् १९०५ में ढाका जुबिली स्कूलसे एन्ट्रेन्सकी परीक्षामें उत्तीर्ण होकर उच्चतर शिक्षाके लिये आप जयपुरके महाराजा कालेजमें प्रविष्ट हुए। इसके उपरान्त स्नातकोत्तर शिक्षाके लिये सन् १९१०में आपका काशी-आगमन हुआ। आपके कर्मजीवनका वास्तविक शुभारम्भ हुआ सन् १९१४ में क्वींस-कालेजके सरस्वती-भवनमें ग्रन्थागारिकके रूपमें नियुक्त होनेपर। बादमें उसी कालेजके अध्यक्षके रूपमें उन्होंने असाधारण कीर्ति तथा प्रतिष्ठाका अर्जन किया। उनका बहुमूल्य परिदान 'सरस्वती-भवन टिक्स्ट एण्ड स्टडीज' नामके दुर्लभ ग्रन्थोंका सम्पादन और निजी निबन्धोंका प्रकाशन है। उनके निबन्ध भारतीय अध्यात्म-साहित्यमें एक नवदिगन्तकी सूचना है। 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंमें आपके अनेक लेख तन्त्र, साधना, योग आदि विषयोंपर प्रकाशित हुए हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतसरकारद्वारा उन्हें महामहोपाध्याय और पद्म-विभूषणकी अति महत्त्वपूर्ण उपाधियाँ प्राप्त हुईं और डी० लिट्० आदि नाना मानद उपाधियाँ भारतीय विश्वविद्यालयों-के द्वारा उन्हें विभिन्न समयोंमें प्राप्त हुईं। आपने ५० वर्षकी आयुमें ही ज्ञान और साधनाकी अदम्य पिपासाकी शान्तिके लिये अवकाश ग्रहण कर लिया। इसी वर्ष आपके गुरु स्वामी विशुद्धानन्दजी परमहंसदेवने अपना शरीर त्याग दिया था और उनकी साधना-परम्पराको अग्रसर करने-हेतु आपने अपनेको शासकीय सेवासे मुक्त कर लिया।

कविराजजीकी अभिरुचि बाल्यकालसे ही आध्यात्मिक साधनाकी ओर थी। उन्होंने काशीमें रहनेवाले अनेक साधु-संतोंको खोज निकाला था तथा उनके सद्गुणोंका परिचय जिज्ञासु जनोंको कराया था। इसी क्रममें आपकी भेंट परमहंस स्वामी विशुद्धानन्दजीसे हुई और उनसे दीक्षा ग्रहण की। स्वामी विशुद्धानन्दजी कविराजजीके सांनिध्यमें ही सूर्य-विज्ञानका प्रदर्शन करते थे। वे पहुँचे हुए योगी थे। तन्त्र-शास्त्रपर उनका अबाधित अधिकार था। तन्त्रके साधना-पक्षकी चर्चा वे सामान्यतः नहीं करते थे; क्योंकि इसके लिये अधिकारी पात्रोंका अभाव था। तन्त्रके सिद्धान्त-विषयक तथा भारतीय साधना और संस्कृति-सम्बन्धी आपके निबन्धोंका संग्रह 'बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्'से पुस्तकरूपमें प्रकाशित है।

—श्रीपुरुषोत्तमदास मोदी

अम्बे !

उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल।

जीवनकी यह जड़ता कराल,
यह जगत वासनामें बेहाल।
पापोंकी ज्वाला बीच भीष्म,
झुलसा-सा यह शुचिता-प्रवाल॥

अघ-कीट काटते विश्व-मूल।
उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल॥

सेवा-व्रतियोंमें त्याग नहीं,
प्रणयीमें टुक अनुराग नहीं।
शूरोंमें लज्जाका न लेश,
यतियोंमें अल्प विराग नहीं॥

सबका है आडंबर समूल।
उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल॥

तू जननि आज उठ बेगि जाग,
दे लगा सृष्टिमें एक आग।
जल जायँ पाप, वासना, काम,
जागे कण-कणमें प्रेम-राग॥

दे पाप-हृदयमें तीव्र हूल।
उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल॥

—कपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी

अनन्तश्री पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज वेद-शास्त्रादि समग्र भारतीय प्राच्य वाङ्मयके मूर्धन्य, मर्मज्ञ एवं अधिकारी व्याख्याताके रूपमें निर्विवाद रूपसे विख्यात रहे हैं। वेदसे प्रारम्भकर दर्शनकी सभी शाखाओं एवं धर्मशास्त्रकी समग्र सरणियोंके गुहा-निहित रहस्योंके प्रकाशनमें वे निर्विचिकित्सित प्रमाण माने जाते हैं। वैदिक सनातन हिंदूधर्मके यावज्जीवन प्रोन्नयनमें उनका योगदान यद्यपि त्रिकालमें कथमपि विस्मरणीय नहीं है, तथापि अन्तरङ्गमें उनकी उच्चकोटिकी यौगिक साधना, कठोर तप-तितिक्षा और प्रचण्ड उपासना, उसमें भी पराम्बा त्रिपुरसुन्दरीकी शास्त्रोक्त वरिवस्या निश्चय ही अत्यन्त परिसीमित जनोंतक ही सुविदित होगी, यह भी सूर्य-प्रकाशवत् सुस्पष्ट है। उसका किंचित् आभास उनके अत्यन्त निकटतम जनोंसे ही सुलभ होता है; क्योंकि मूलतः यह विषय गोपनीय ही हुआ करता है।

वस्तुतः पूज्य स्वामीजीकी सभी क्षेत्रोंमें सर्वाङ्गीण क्षमता पराम्बाकी उपासनासे प्रसूत उनके अनुग्रहका ही वरदान है। उनकी इस उपासनाकी कुछ झलक उन्हींकी अमर लेखनीसे प्रसूत 'श्रीविद्या-वरिवस्या' और 'श्रीविद्यारत्नाकर'-जैसे ग्रन्थ ही करा देते हैं, जिनमें उन्होंने इस सम्प्रदायके सर्वोच्च तान्त्रिक सिद्धान्तों एवं दक्षिणमार्गीय समग्र उपासना-पद्धतिको अङ्कित कर दिया है। उन्हींसे स्पष्ट हो जाता है कि वे भी पराशक्तिके एक परम उपासक रहे हैं। इस प्रकार आपने अपने परमाचार्य भगवत्पाद आद्य शंकराचार्यद्वारा प्रसारित दक्षिणमार्गीय श्रीविद्योपासनाकी परम्पराका ही यथावत् निर्वहण किया है।

जहाँतक पूज्य स्वामीजीके निकटतम व्यक्तियोंसे एतद्विषयक कुछ जानकारी प्राप्त हुई, उसके अनुसार स्वामीजी न केवल श्रीविद्याके पारम्परीय विधिवत् दीक्षित रहे, प्रत्युत नित्य-नियमसे सुदीर्घ कालतक पराम्बाके त्रिकालपूजनके अनुष्ठाता भी रहे हैं। उनका यह उपासना-क्रम प्रातः तीन बजेसे ही प्रारम्भ होकर मध्यरात्रितक अनुस्यूत रहता था। इसीके अङ्गभूत आपका कुण्डलिनी-जागरणसे सम्बद्ध यौगिक साधना एवं सुदीर्घकालतक शीर्षासनके बीच 'देवी-माहात्म्यादि'के समग्र सम्पुटित पाठका क्रम भी आपके अतिनिकटस्थ जन देख-सुन चुके हैं।

आपका यह उपासना-क्रम यात्रामें भी अव्याहत रूपसे चलता रहता था। अर्चनाकी सारी सामग्री आपके साथ रहती थी। यों तो तन्त्रशास्त्रोंमें श्रीविद्यासपर्याको बहुमूल्य विविध राजोपचारोंसे सम्पादित करनेका विधान है। स्वामीजीके पूजनमें भी यथासुलभ उनका विनियोग होता रहता था। फिर भी एक बार एक अनन्य भक्तद्वारा यह पूछनेपर कि 'सुदूर यात्रामें कहीं ये पूजन-सामग्री सुलभ न हो पायें तो आपकी पूजा कैसे होती है?' स्वामीजीने कहा कि 'मेरे पास सदैव ही गङ्गाजल रहता है। उसीसे भगवतीका स्नानादि और उसीसे नैवेद्य चढ़ानेसे पूजनमें किसी प्रकार अन्तराय नहीं पड़ता। फिर भावनाका स्रोत मन तो सदैव साथ ही रहता है न?' यह वार्तालाप स्पष्ट संकेत करता है कि स्वामीजीकी पूजा स्थूल और सूक्ष्मतक ही परिसीमित नहीं रही, अपितु वे पराम्बाकी परा-पूजाके भी उपासक रहे हैं।

'कल्याण'के 'उपासनाङ्क'में पूज्य स्वामीजी लिखते हैं कि "**देवो भूत्वा यजेद् देवं नादेवो देवमर्चयेत्**" इत्यादि वचनोंके अनुसार अप्राकृत रसस्वरूप पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवत्स्वरूप वा भगवतीकी उपासनाके लिये उपासकको देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि, अहंकार तथा

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तरात्माकी प्राकृतिकता, भौतिकता तथा लौकिकताका समूलोन्मूलन तथा उनमें अप्राकृतिकता, रसात्मकता एवं पूर्ण दिव्यताका आविर्भाव होना आवश्यक है। कहना न होगा कि उपासनाके लिये उपर्युक्त निर्बन्धके व्याख्याता परिनिष्ठित विद्वान् पूज्य स्वामीजी पराम्बाकी उपासनाके समय अपनी देहमें भी पराम्बाकी दिव्यताका ही आविर्भाव किया करते थे।

पराम्बा त्रिपुरसुन्दरी श्रीविद्याकी इस उपासनाके साथ-साथ पूज्य स्वामीजीके चातुर्मास्यादिमें एकत्र निवासकालमें वेदान्तादि शास्त्रोंका अध्यापन, प्रवचन और धर्मरक्षा-सम्बन्धी विविध कार्योंकी संलग्नता तो सभी जानते ही हैं। उनकी शरीर-यात्रा भी आदर्श योगिवत् रही। वे सूर्यास्तके कुछ पूर्व दिनमें केवल एक बार सात्त्विक आहार लेते थे और निद्रा भी चौबीस घण्टोंमें मात्र ३-३॥ घण्टेसे अधिक नहीं होती थी। कभी कोई भोजनमें पोषक महर्घ वस्तु रख देता तो आप उससे यह कहकर अस्वीकार कर देते कि 'साधुको इस प्रकार पोषक पदार्थ ग्रहण नहीं करने चाहिये।'

इस प्रकार पूज्य स्वामीजीका उच्चकोटिका वेद-शास्त्रीय वैदुष्य, कठोर तप एवं योगसाधना तथा पराम्बा त्रिपुर-सुन्दरीकी अन्तर्याग-बहिर्याग उपासना और धर्मप्रचारको देखते कहना पड़ता है कि भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य ही अपने अभिनव पूर्णावतारके रूपमें अवतरित हुए थे।

(गो० न० वै०)

श्रीअमृतवाग्भवाचार्य

वीतराग ब्रह्मनिष्ठ अमृतवाग्भवाचार्य निकट अतीतमें एक अधिकारी शक्ति-उपासक हो गये हैं। जिनका अधिकांश कार्यक्षेत्र सोलन, शिमला, कश्मीर और जयपुर-भरतपुर (राजस्थान) रहा है।

आप उच्चकोटिके श्रीविद्याके उपासक तो थे ही, कई छोटे-बड़े स्तवों आदिके रूपमें भी आपने श्रीविद्या-सम्प्रदायके अनेक गूढ़ रहस्योंको अपने प्रत्यक्ष अनुभवके माध्यमसे प्रकाशमें लाया है, जिनमें 'श्रीसिद्धमहारहस्यम्, महानुभावशक्तिस्तवः, श्रीपरशुराम, त्रिंशिकाशास्त्रम्, संक्रान्ति-पञ्चदशी, मन्दाक्रान्तास्तोत्रम्' आदि प्रमुख हैं। २४ नवम्बर, १९८२ को आप ब्रह्मलीन हुए हैं।

शाक्त-सम्प्रदायके अधिकारी विद्वान् महामहोपाध्याय पद्मभूषण स्व० गोपीनाथ कविराजजीने आचार्यजीके ग्रन्थ 'श्रीसिद्धमहारहस्यम्'की भूमिकामें लिखा है, 'इस ग्रन्थके अवलोकनसे पता चलता है कि कलियुगके सर्वादि तन्त्रोपदेशक क्रोध भट्टारक दुर्वासा मुनिने प्रत्यक्ष आविर्भूत होकर इन ग्रन्थकारको पूर्णयोगका उपदेश दिया है। इसी योगका अवलम्बन लेकर सभी योगोंकी पूर्णता प्राप्त होती है। दुर्वासा मुनिसे उपदेश प्राप्तकर ये ग्रन्थकार तबसे दीर्घकालतक नैरन्तर्य और सत्कारसे पूर्णाहम्भावका आश्रयण करते हुए उसी योगका अभ्यास करते रहे। इस अवधिमें इन्हें बीच-बीचमें अनेक दिव्य शक्तियोंके दर्शन हुए। जिस क्षेत्र और जिस कालमें इन्हें ये दिव्यदर्शन हुए, उनका इन्होंने अपने ग्रन्थमें स्पष्ट उल्लेख किया है। अत्यन्त गोप्य तत्त्व होनेके कारण भगवान्‌की आज्ञासे इन्होंने जीवोंके कल्याणका ध्यान रखते हुए संक्षेपमें उतना ही प्रकट किया, जितना सम्भव और उचित था। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इससे शक्तिपातसे पूतान्तःकरण साधकोंका महान् उपकार होगा।'

श्रीकविराजजी आगे लिखते हैं—'आज विश्रुतकीर्ति ये आचार्य कभी कैशोरके पश्चात् यौवनोन्मेषकी अवस्थामें (गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज, बनारसमें मेरे प्रिंसिपल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहते) अध्यक्षके सम्बन्धसे मेरे अत्यन्त वात्सल्यभाजन रहे । उसी तरह आज भी ३ मार्च, १९६५ को यह लिखते समय इसे स्मरण करता हूँ । ३६ वर्षोंसे भी अधिक समयतक इनके देश-देशान्तरमें भ्रमण करनेसे मुझे इनका दर्शन नहीं हो पाया, फिर भी इनकी स्मृति मेरे चित्त-दर्पणमें पूर्ववत् समुज्ज्वल है । इस सुदीर्घ अन्तरमें इनके जीवनमें अत्यन्त महती समुन्नति हो गयी, जिसका कारण इनका कठोर तप हो सकता है । पूर्व-जन्मके इनके अपने शुभकर्मोंका परिपाक कहा जा सकता है, किंवा भगवान्‌का अचिन्त्य, अहैतुक अनुग्रह माना जा सकता है ।'

आचार्यकी यह समुन्नति लौकिक प्रतिष्ठाविषयक नहीं है और न विद्वद्गोष्ठीमें किसी प्रकारके समादरसे सम्बद्ध है, प्रत्युत स्वात्मस्वरूपसे अभिन्न शिवशक्तिरूप निरावरण प्रकाश-मार्गमें कोई अनिर्वचनीय प्रगति है ।

आचार्य अमृतवाग्भवाचार्य उच्चकोटिके सिद्ध शक्ति-उपासक तो थे ही, उनमें राष्ट्रभक्ति भी कूट-कूटकर भरी थी । यह उनका 'राष्ट्रालोक' ग्रन्थ देखनेसे सुस्पष्ट है । आपके चरित्रसे यह भी स्पष्ट होता है कि आप महात्मा गांधी और कस्तूरबाके निकट सम्पर्कमें रहे थे । अधिकांशतः आप जनसाधारणसे दूर एकान्तमें ही निवास करते थे । 'सिद्धमहारहस्यम्'के अतिरिक्त 'आत्म-विलास' ग्रन्थमें भी आपकी सर्वतन्त्रस्वतन्त्रता भलीभाँति स्पष्ट होती है ।

आचार्य अमृतवाग्भवाचार्यके पूर्वाश्रमका नाम श्रीवैद्यनाथ वरकले था, जिन्होंने आषाढ़ शुक्ल दशमी संवत् १९६०वि० (सन् १९०६ ई०)में काशीमें श्रीकृष्णशास्त्री नामक महाराष्ट्रीय विद्वान् ब्राह्मणके यहाँ जन्म ग्रहण किया था । सर्वदा अध्ययन और उपासनामें रत और अध्ययनकालसे ही प्रौढ़ संस्कृत-कविता लिखनेवाले श्रीवैद्यनाथका पारिवारिकजनोंके अत्याग्रहपर विवाह तो काशीके एक प्रतिष्ठित विद्वान्‌की कन्यासे हुआ, किंतु सहज विरक्तिवश वैवाहिक सुखका स्पर्श होनेके पूर्व ही इन्होंने गृहत्याग कर दिया और, ७४ । ७५ वर्षोंके बाद आप अमृतवाग्भवाचार्य बनकर काशी आये और तबतक अखण्ड पातिव्रतका पालन करती हुई साध्वी गृहिणीको दर्शन देकर उसे अपने परमशिवस्वरूपमें सदाके लिये लीन कर लिया ।

महालक्ष्मीके उपासक श्रीस्वामी अच्युतानन्दतीर्थ

इन्दौरमें 'महालक्ष्मी-उपासना-मण्डल' नामसे एक सुख्यात धर्म-संस्थान है, जिसके प्रेरणास्रोत थे श्रीस्वामी अच्युतानन्दतीर्थ 'भागवतस्वामी' । स्वामीजीका जन्म २० दिसम्बर १८७१ में और निर्वाण ८२ वर्षकी अवस्थामें २५ जनवरी १९५३ ई० को हुआ । भागवत-स्वामी मूलतः महाराष्ट्रके कोंकण प्रदेशके थे और राजकीय सेवाके संदर्भमें मध्यप्रदेशमें आये । ट्रेजरी आफिसरके रूपमें भोपाल, ग्वालियर, इन्दौर, मानपुर, नौगाँव आदि स्थानोंपर उन्होंने राजकीय सेवा की और सेवानिवृत्त होते ही अध्यात्मपथके पथिक बन गये । आप फलाहार ही ग्रहण करते और वह भी सप्तशतीके पाठके पश्चात् ही । स्वामीजी धर्म-प्रचारकके साथ-साथ उल्लेख्य कर्मवीर रहे । आपने अनेक तीर्थस्थानोंकी यात्राएँ की थी । अनेक धर्म एवं शास्त्रोंमें विश्वास न रखनेवालोंको आपने अनेक उपदेशों तथा चमत्कारोंसे धर्मनिष्ठ बनाया । उपर्युक्त महालक्ष्मी-उपासना-मण्डल आज भी उनके बताये मार्गपर चलकर जनसाधारणको भगवती महालक्ष्मी आदिशक्तिकी उपासनाकी ओर प्रेरित करता रहता है ।

—डॉ० श्रीकिशनलाल बंसीलाल जायसवाल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

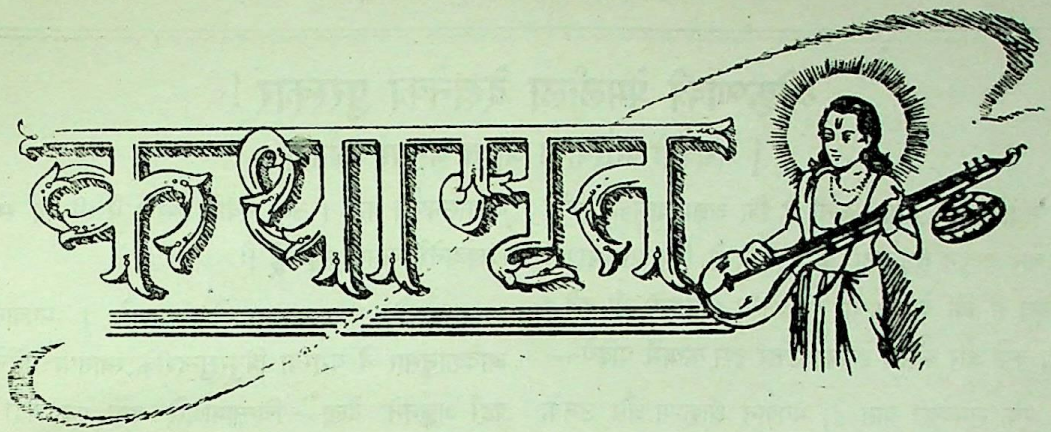

शिवजीका राधारूप-धारण

एक बार परम कौतुकी भगवान् शिवने पार्वतीजीसे कहा—'देवि ! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो तो कहीं पृथ्वीपर पुरुषरूपमें अवतार लो और मैं स्त्रीरूप-धारण करूँ। यहाँ जैसे मैं तुम्हारा प्रियतम पति हूँ और तुम मेरी प्राणप्रिया भार्या हो, वैसे ही वहाँ तुम मेरे पति बनो और मैं तुम्हारी पत्नी बनूँ। बस, यही मेरा अभीष्ट है। तुम मेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण करती रही हो, अतः इसे भी पूरी करो।'

शक्तिमान्‌की इच्छा पूर्ण करनेके लिये शक्तिने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा—'नवीन नीरद-सी कान्तिमती मेरी भद्रकाली-मूर्ति श्रीकृष्णरूपसे भूतलपर अवतरित होगी। आप भी अपने अंशसे स्त्रीरूपमें अवतरित होइये।'

भगवान् शिव परम संतुष्ट हो उठे और बोले—'मैं तुम्हारा प्रिय करनेके लिये अपने नौ रूपोंसे प्रकट होऊँगा। प्रिये ! स्वयं मैं प्रेमकी साकार मूर्ति वृषभानु-नन्दिनी राधाके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा और तुम्हारी प्राणप्रिया बनकर तुम्हारे साथ विहार करूँगा। मेरी शेष आठ मूर्तियाँ आठ रमणियोंके रूपमें प्रकट होंगी और वे ही मनोहरनयना रुक्मिणी, सत्यभामा आदि तुम्हारी पटरानियाँ होंगी। इसके अतिरिक्त मेरे ये जो भैरवगण हैं, वे भी रमणीरूप धारणकर ब्रजकी गोपाङ्गनाओंके रूपमें भूतलपर अवतीर्ण होंगे।'

देवीने कहा—'आपकी इच्छा पूर्ण हो। मैं आपकी इन मूर्तियोंके साथ यथोचित विहार करूँगी। प्रभो ! मेरी भी जया और विजया नामकी जो दो सखियाँ हैं, वे पुरुषरूपमें श्रीदामा और सुदामा होंगी। विष्णु भगवान्‌के साथ मेरा पहले ही तय हो चुका है कि वे हलधरके रूपमें मेरे बड़े भाई होंगे और सदैव मेरा कार्य सिद्ध करते रहेंगे। उन महाबलीका नाम राम (बलराम) होगा। इस प्रकार आपकी इच्छा पूरी कर अपनी महती कीर्ति स्थापित करती हुई मैं पुनः भूतलसे लौट आऊँगी।'

इसी निश्चयके अनुसार पृथ्वी और ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर श्रीपार्वतीजी श्रीकृष्णरूपमें तथा श्रीशिवजी राधारूपमें प्रकट हुए।

यह एक कल्पमें श्रीराधा-कृष्णके अवतारका बाह्य रहस्य है। भगवान् और भगवतीकी गूढ़ अभिसंधिको कौन जान सकता है ! इसी प्रकार पार्वतीको भी नारायण-का रूप कहा गया है।

—'महाभागवत'के आधारपर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीकृष्णकी प्रेमलीला देखनेका पुरस्कार !

[भगवती पराम्बाका अद्भुत अनुग्रह-दर्शन]

महाभारतमें कथा आती है कि अज्ञातवासके समय एक बार अर्जुन बृहन्नला (क्लीव) बने थे, किंतु पद्मपुराणमें उल्लेख है कि वे एक बार 'किशोरी' (अर्जुनी) भी बने। कब, क्यों और कैसे ? इसका उत्तर इस कथामें पढ़िये—

एक समयकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण और उनके सखा अर्जुन यमुनाजीके किनारे एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए विश्राम कर रहे थे। उसी समय अर्जुन पूछ बैठे—'भगवन् ! एक बार आपने ऐसा कहा था कि गोपकन्याएँ मेरी प्रेयसी हैं तो बताइये कि वे कितनी हैं ? उनके नाम, रूप और अवस्था कैसी और कितनी है ? वे कहाँ रहती और क्या करती हैं ? साथ ही यह भी बताइये कि आप उन प्रेयसियोंमेंसे किन-किन-के साथ सदैव आनन्द और वैभवसे परिपूर्ण किस स्थानपर एकान्त-विहार करते हैं ?'

भगवान्‌ने कहा—'सखे ! ये बातें मेरे प्राणप्रिय पुरुषके लिये भी जानने योग्य नहीं हैं। यदि तुम जान लोगे तो फिर उन्हें देखनेके लिये भी उतावले हो उठोगे, किंतु यह रहस्य जब ब्रह्मादि देव भी नहीं जान और देख सकते, तब फिर तुम्हारी तो बात ही क्या है ? इसलिये यह हठ छोड़ दो। इसे न जाननेसे तुम्हारी हानि ही क्या है ?'

भगवान्‌के ऐसे नीरस और कठोर वचन सुनकर अर्जुन खिन्न हो गये और भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़े। भक्तवत्सल प्रभुने हँसते हुए दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाया और बड़े प्रेमके साथ कहा—'उस स्थानको देखना ही चाहते हो तो उसके वर्णनसे क्या लाभ ? तुम ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति-स्थिति-लयकारिणी पराम्बा त्रिपुर-सुन्दरीकी शरणमें जाओ और उनकी आराधना कर आत्मसमर्पण करो। उन देवीके सिवा मैं भी वह स्थान दिखलानेमें समर्थ नहीं हूँ।'

अर्जुनके नेत्र आनन्दसे भर गये। भगवान्‌के आदेशानुसार वे पराम्बा त्रिपुरसुन्दरीके स्थानपर पहुँचे। वहाँ अर्जुनने देखा—चिन्तामणिसे बनी एक वेदी है, जो विविध रत्नोंकी सीढ़ियोंसे सुशोभित हो रही है। उसपर पीछेकी ओर कल्पवृक्ष लहलहा रहा है और वह फूलों एवं फलोंके भारसे झुका हुआ है। सभी ऋतुओंमें कोमल और मधुबिन्दुवर्षी उसके पल्लव पवनसे कम्पित हो रहे हैं। वृक्षपर शुक, सारिका, पारावत आदि रमणीय पक्षी कलनाद और फूलोंपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। कल्पवृक्षके नीचे अत्यन्त अद्भुत रत्ननिर्मित दिव्य मन्दिर है। उसके बीच रत्नजटित सिंहासनपर भक्तवत्सला, वरदायिनी, प्रसन्नवदना त्रिपुराम्बा विराजमान हैं, जो अनेक देव-देवियों और सिद्धियोंसे घिरी हुई हैं।

देवीका दर्शन पाकर पार्थका हृदय भक्तिसे गद्‌गद हो गया। 'मेरा नाम अर्जुन है'—कहकर उन्होंने हाथ जोड़कर बार-बार माताको अभिवादन किया और फिर वे एक कोनेमें जाकर खड़े हो गये।

भगवतीने कहा—'वत्स ! तुमसे ऐसा कौन-सा अत्यन्त दुर्लभ शुभकर्म बन पड़ा, जो शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें इस अत्यन्त गूढ़ रहस्यको जाननेका अधिकारी समझा ? अस्तु, देखो, यह निकटवर्तिनी देवी सर्वकामनापूर्णा है। इसके साथ तुम मेरे 'कुलकुण्ड' नामक सरोवरपर जाओ और उसमें विधिवत् स्नान करके शीघ्र लौट आओ।'

पार्थ सरोवरपर पहुँचे और उसमें विधिवत् स्नानकर तुरंत लौट आये। देवीने उनसे न्यास-मुद्रादि करवाये

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और उनके दक्षिण कर्णमें सिद्धिदायिनी परा बालाविद्याके मन्त्रका उपदेश किया । साथ ही उस मन्त्रका अनुष्ठान, पूजन, लक्षसंख्यक जप तथा करवीर (कनेर)की लाल कलिकाओंद्वारा हवन आदिका यथोचित प्रयोग समझाते हुए कहा——'वत्स ! इसी प्रकारसे मेरी उपासना करो । जब मैं प्रसन्न हो जाऊँगी, तब तुम्हें तत्काल श्रीकृष्णके लीलादर्शनका अधिकार प्राप्त हो जायगा ।'

अर्जुनने निर्दिष्ट पद्धतिसे भगवतीकी आराधना आरम्भ कर दी और पूजन तथा जप सम्पन्न करके देवीको प्रसन्न कर लिया । भगवती उपस्थित हो गयीं और मुस्कराती हुई बोलीं—'वत्स ! अब तुम उस भवनके अंदर जाओ ।' पार्थ आनन्दित हो बड़े वेगसे उठे और उन्होंने अत्यन्त उल्लसित हो देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया । फिर भगवती-की आज्ञा पाकर उनकी सहचरीके साथ अर्जुन राधा-पतिके उस स्थानपर गये, जहाँ सिद्ध भी नहीं पहुँच पाते।

देवीकी सखीके उपदेशसे अर्जुनने गोलोकसे ऊपर स्थित उस नित्य वृन्दावनधामका दर्शन किया, जो वायुके धारण करनेपर भी स्थिर है तथा नित्य, सत्य और सम्पूर्ण सुखोंका स्थान है । वहाँ नित्य ही रास-महोत्सव हुआ करता है । अपने दिव्य नेत्रोंसे उस रहस्यमय दिव्य स्थानका दर्शन कर अर्जुन प्रेमोद्रेकसे विह्वल हो उठे और मोहवश मूर्छित होकर वहीं गिर पड़े । मोह-तन्द्रासे चैतन्य होनेपर देवीकी सहचरीने अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाया और हाथ पकड़कर वहाँसे दक्षिणकी ओर एक उत्तम स्थानपर ले जाकर कहा——'पार्थ ! तुम इस शुभद जलराशिमें स्नानार्थ प्रवेश करो । यह सहस्रदल कमलका आकर है, इसके चारों ओर चार घाट हैं । यह सरोवर जल-जन्तुओंसे व्याप्त है, इसके भीतर प्रवेश करनेपर तुम यहाँकी विशेष बातें देख सकोगे ।'

सहचरीने आगे कहा——'पार्थ ! यहाँसे दक्षिणभागमें जो सरोवर दीख रहा है, उसका नाम '[illegible]-निर्झर' [illegible] है, वहाँ मधूकके मधुर मकरन्दका पान हुआ करता है । वह सामने जो विकसित उद्यान है, वहाँ भगवान् गोविन्द वसन्त-ऋतुमें वसन्त-कुसुमोदित मदनोत्सव मनाते हैं । यहाँ दिन-रात भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति होती है । तुम इस सरोवरमें स्नान करके पुनः पूर्व-सरोवरके तटपर जाओ और उसके जलका आचमन कर अपना मनोरथ सिद्ध करो ।'

सहचरीकी बात सुनकर अर्जुनने ज्यों ही जलमें प्रवेश कर डुबकी लगायी त्यों ही सहचरी अन्तर्धान हो गयी और जलसे निकलनेपर अर्जुनने स्वयंको सम्भ्रममें पड़ी एकाकिनी सुन्दरी किशोरी रमणीके रूपमें देखा । उस बालाकी गौर अङ्ग-कान्ति सद्यः तप्त-स्वर्णवत् थी । उसका मुख शरत्कालीन चन्द्रमाके समान आह्लादक और अलकावली रत्नसूत्रोंसे गुँथी हुई बाँकी, चिकनी और काली थी । सीमन्तभाग सिन्दूरबिन्दुकी प्रभासे देदीप्यमान हो रहा था । ऊपरकी ओर तनी भौंहोंकी भङ्गिमासे वह कन्दर्प-धनुषको पराजित कर रही थी । स्निग्ध, श्यामल एवं चञ्चल नयन-खंजरीट विलास कर रहे थे । मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे कपोल-मण्डल उद्भासित हो रहा था। कमलनाल-सी कोमल तथा शोभायमान बाहुवल्लरी अद्भुत प्रतीत हो रही थीं । पाणिपल्लवोंने मानो शरद्-ऋतुके अरुण कमलोंकी समस्त शोभा चुरा ली हो । उसका कटिप्रदेश चतुर स्वर्णकारके बनाये सुवर्णमय कटिसूत्रसे आवेष्टित था । झनकारते हुए मणिमय मंजीरोंसे उसके चरणकमल सुहावने लग रहे थे । वह रमणीजनोचित सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न, सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित आश्चर्यजनक सुन्दरी ललना लग रही थी ।

गोपीवल्लभ गोविन्दकी मायासे वह सुन्दरी अपने पूर्व शरीरकी सारी बातें भूल गयी और विस्मित-भावसे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गयी । [illegible] गम्भीर शब्द हुआ——'सुन्दरि !

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम इसी मार्गसे पूर्व-सरोवरके तटपर चली जाओ और वहाँके जलका आचमन कर अपना मनोरथ सिद्ध करो। वरवर्णिनि ! खेद मत करो, वहीं तुम्हारी सखियाँ हैं। वे तुम्हारे उत्तम मनोरथको पूर्ण कर देंगी।'

देवी-वाणी सुनकर सुन्दरी पूर्व-सरोवरके तटपर गयी। उस जलाशयमें अनेक अपूर्व स्रोत थे। वह विविध भाँतिके विहङ्गमोंसे भरा हुआ था। कैरव, कह्लार, कमल और इन्दीवर आदि सुविकसित कुसुम उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। पद्मरागमणिके बने उसके सोपान और घाट बड़े सुन्दर थे। भाँति-भाँतिके पुष्पों तथा मञ्जुल निकुञ्ज-लताओं और वृक्षोंसे चारों तट सुशोभित थे। किशोरी वहाँ आचमन करके क्षणभर खड़ी रही। इसी समय कानोंमें कूजती काञ्ची तथा मंजीरकी मधुर ध्वनिसे मिश्रित किङ्किणीकी झनकार उसे सुनायी देने लगी। फिर अद्भुत यौवनसम्पन्न दिव्य वनिताओंका झुंड वहाँ आ पहुँचा। उनके आभूषण, रूप, भाषण, शरीर, विलास, विचित्र वचन, विचित्र हास और अवलोकन आदि सभी दिव्य थे और लावण्य मधुर तथा अद्भुत था। उनमें जगत्की समस्त मधुरिमा कूट-कूटकर भरी थी।

उस परम आश्चर्यजनक वनितावृन्दको देखकर किशोरी मन-ही-मन कुछ सोचने लगी और पैरके अँगूठेसे जमीन कुरेदती हुई सिर झुकाये खड़ी रही। इसे अकेली खड़ी देख वनिताएँ आपसमें विचारने लगीं कि बड़ी देरसे कौतूहलमें पड़ी यह हमारी ही जातिकी स्त्री कौन है ? चलकर इसे जानना चाहिये। तुरंत ही कौतुकवश सभी रमणियाँ इसे देखने आ पहुँचीं। उनमेंसे प्रियंवदा नामकी मनस्विनी बालाने उसके पास जाकर प्रेमपूर्वक पूछा—'सखी! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो और किसकी प्राण-प्रिया हो ? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है ? किसके द्वारा तुम यहाँ आयी हो या स्वयं ही आ पहुँची हो ? चिन्ता-की कोई बात नहीं। निःसंकोच सब कुछ बता दो। भला, इस परमानन्दमय स्थानमें किसीको कुछ दुःख हो सकता है ?'

विनीतभावसे उनके मनोंको मोहित करती हुई किशोरी बोली—'मैं कौन हूँ, किसकी कन्या या प्रेयसी हूँ, मुझे यहाँ कौन लाया या मैं स्वयं चली आयी ? इन बातोंको तो भगवतीजी ही जानें, मुझे कुछ भी मालूम नहीं। फिर भी मैं कुछ कहती हूँ, यदि मेरी बातोंपर विश्वास हो तो सुनें।'

किशोरीने पूर्व-सरोवरपर जानेसे लेकर यहाँ पहुँचने-तककी सारी घटना कह सुनायी और कहा—'देवियो ! मन, वाणी और शरीरसे मुझे इतना ही मालूम है। बड़ी कृपा हो, यदि आपलोग भी बतायें कि आप कौन हैं, किनकी कन्याएँ हैं, आपलोगोंकी जन्म-भूमि कहाँ है और आपलोग किनकी वल्लभाएँ हैं ?'

प्रियंवदा बोली—'अच्छा, मैं बतलाती हूँ। शुभे ! हमलोग वृन्दावनके कलानाथ गोविन्दकी प्राणप्यारी सखियाँ तथा विहार-सहचरियाँ हैं। हम आत्मानन्दमयी व्रजबालाएँ यहाँ आयी हैं। ये श्रुतिगण तथा मुनिगण भी यहाँ वनितारूपमें हैं। हमलोग गोप-कन्याएँ हैं—यह स्वरूपतः तुम्हें बतला दिया। पूर्व-कालमें हममेंसे जो-जो राधापतिको अत्यन्त प्यारी थीं, वे ही यहाँ उनके सङ्ग नित्यविहार करनेवाली क्रीडाभूमिकी सहचरी हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सबका परिचय भी तुम्हें प्राप्त करना चाहिये। भामिनि ! अब हमलोगोंके साथ तुम भी यहाँ विहार करोगी। चलो पूर्व-सरोवरपर तुम्हें विधिवत् स्नान कराकर मैं सिद्धिदायक मन्त्र देती हूँ।'

किशोरीको पूर्व-सरोवरपर लाकर प्रियंवदाने उसे विधिवत् स्नान कराया और दीक्षाविधिके साथ वृन्दावन-चन्द्रकी प्रेयसीके उत्तम मन्त्रका उपदेश किया तथा पुरश्चरणकी विधि, ध्यान तथा होम एवं जपकी संख्या भी बतला दी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सखियोंद्वारा लाये हुए कह्लार, करवीर(कनेर), चम्पा तथा कमल आदि अनेक सुगन्धित कुसुमोंसे और पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके दिव्य नैवेद्योंसे किशोरीने देवीकी विधिवत् पूजा करके एक लाख मन्त्र-जप किया और फिर विधिपूर्वक हवन करके पृथ्वीपर लेटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए उसने देवीकी स्तुति की।

किशोरीकी कठोर आराधनासे प्रसन्न हो भगवती श्रीराधिकादेवी वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गयीं। उनकी कान्ति काञ्चन तथा चम्पाके समान कमनीय थी। उनके प्रत्येक अङ्गसे सौन्दर्य, लावण्य और माधुर्य बरस रहा था। शरत्कालके कलंकहीन कलाधरके समान उनके श्री-मुखकी शोभा और स्नेह-युक्त मधुर मुसुकान त्रिभुवन-मोहिनी थी। वे भक्तवत्सला वरदायिनी देवी राधा अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बोलीं—'शुभे! मेरी सखियोंकी बातें सत्य हैं, इसलिये तुम मेरी प्रिय सखी हो। उठो, चलो, तुम्हारी कामना पूर्ण किये देती हूँ।' किशोरी (अर्जुना) देवीके मुखसे मनोवाञ्छित वाणी सुनकर पुलकित हो उठी और प्रेम-विह्वल हो नेत्रोंमें आँसू भरकर देवीके चरणोंपर गिर पड़ी।

श्रीराधाने अपनी सखी प्रियंवदासे कहा—'तुम इसे हाथका अवलम्बन देकर आश्वासन देती हुई मेरे साथ ले चलो।' प्रियंवदाने ऐसा ही किया। उत्तर-सरोवरके तटपर पहुँचकर किशोरीको विधिपूर्वक नहलाया गया। फिर संकल्पपूर्वक विधिवत् पूजन कराकर हरिवल्लभा श्रीराधादेवीने उसे गोकुलचन्द्र श्रीकृष्णके मन्त्रका उपदेश किया। वे गोविन्दके संकेतको जानती थीं, अतः उन्होंने उसे अविचल भक्ति प्रदान की और मन्त्रराजके साथ मोहनका ध्यान भी बता दिया। इस अनुष्ठानमें नील-कमलके समान श्यामल, अलङ्कारोंसे विभूषित, कोटि-कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली तथा रास-रसके लिये समुत्सुक श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिये।

किशोरीको उपर्युक्त बातें समझाकर और प्रियंवदासे यह कहकर कि 'इसका उत्तम पुरश्चरण पूर्ण न होनेतक तुम सखियोंके साथ सावधान होकर इसकी रक्षा करती रहो।' रासेश्वरी सखियोंके पास अपनी छाया रखकर स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके निकट चली गयीं।

प्रियंवदाके आदेशसे यहाँ अर्जुनीने गोरोचन, कुङ्कुम और चन्दन आदि नाना मिश्रित द्रव्योंसे अष्टदल कमलके आकारमें एक यन्त्र बनाया तथा उसमें मोहन-मन्त्रका न्यास किया। इसके बाद उसने ऋतु-सम्भूत विविध पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, मुखवास, वस्त्र, आभूषण और माला आदि एवं वाहन तथा आयुधों-सहित भगवान् श्यामसुन्दरकी पूजा करके उनकी स्तुति की और नमस्कार किया; फिर वह मन-ही-मन उनका स्मरण करने लगी।

यथोपदिष्ट यथाविधि 'मन्त्रराज'के अनुष्ठानसे भगवान् श्यामसुन्दर प्रसन्न हुए और उन्होंने मुसुकानभरी दृष्टिसे संकेत करके राधारानीसे कहा—'उस किशोरीको यहाँ शीघ्र बुलाओ।' आज्ञा पाते ही देवीने अपनी सखी शारदाको भेजकर उसे तुरंत बुला लिया।

वह रसिकशेखर श्रीकृष्णचन्द्रके सामने आते ही प्रेम-विह्वल हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसके अङ्गोंमें स्वेद, पुलक और कम्प आदि सात्त्विक विकार उत्पन्न हो गये। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उठकर जब उसने नेत्र खोले तो सबसे प्रथम वहाँका विचित्र मनोरम स्थान दीख पड़ा। उसके बाद कल्पवृक्षपर दृष्टि पड़ी, उसके पत्ते मरकतमणिके समान और पल्लव प्रवालमय (मूँगे-से) थे, तना कोमल और सुवर्णमय था। मूल स्फटिकके समान श्वेत था। वह वृक्ष काम-सम्पदाको देनेवाला था। उसके नीचे रत्न-मन्दिर था, जिसमें एक रत्नमय सिंहासन रखा था। उसपर भी अष्टदल-पद्म बना था। उसमें बायें-दायेंके क्रमसे शङ्ख और पद्मनिधि रखे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये थे। चारों ओर जगह-जगह कामधेनु गौएँ थीं। सब ओर नन्दन-वन था, उसमें मलयसमीर बह रहा था। सभी ऋतुओंके कुसुमोंकी दिव्य मन्द-मधुर सुगन्ध आ रही थी, निरन्तर मधु-बिन्दुकी वर्षासे वह उद्यान अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहा था। उसका मध्यभाग मधुपान-मत्त भ्रमरोंकी गुंजारसे सदा मुखरित था। कोयल, कपोती, सारिका, शुकी तथा अन्य विहङ्ग-वनिताओंका कलनाद वहाँ नित्य हुआ करता था। मतवाले मयूरोंके नृत्यसे व्याप्त वह उपवन प्रेम-पीड़ाको बढ़ा रहा था।

ऐसे रमणीय स्थानमें भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। उनके श्रीअङ्गकी कान्ति श्यामल थी। अलकावली स्निग्ध, असित एवं भङ्गुरित थी। उससे आँवलेकी सुगन्ध आ रही थी। मत्त मयूरोंकी शिखा तथा मयूर-पिच्छोंसे उनकी अलकावली सुशोभित हो रही थी। बायें कानके पुष्पमय आभूषणपर भ्रमर बैठे थे। दर्पणके समान उज्ज्वल, स्निग्ध कपोल चञ्चल अलकोंके स्पर्शसे शोभित हो रहे थे। मस्तकमें सुन्दर तिलक लगा था। तिलके फूल और शुककी चोंचके समान उनकी मनोहर नासिका थी। बिम्बफलके सदृश सुन्दर अरुण अधर थे। वे अपनी मन्द मुसकानसे प्रेमोद्दीपन कर रहे थे। गलेमें मनोहर वनमाला थी और सहस्रों मदोन्मत्त भ्रमरोंसे भरी पारिजातकी सुन्दर माला दोनों स्थूल स्कंधोंपर शोभायमान थी। मुक्ताहार तथा कौस्तुभमणिसे वक्षःस्थल विभूषित था, उसमें श्रीवत्सका चिह्न भी सुशोभित था। आजानुलम्बी भुजाएँ मनोहर थीं। नाभि गम्भीर और मध्यभाग सिंहकी कटिसे भी कहीं अधिक क्षीण और सुन्दर था। वे अपने लावण्यसे कोटि कन्दर्पोंको पराजित कर रहे थे। वेणुके मनोहर गानसे वे त्रिभुवनको सुखके समुद्रमें निमग्न तथा मोहित कर रहे थे। उनका प्रत्येक अङ्ग प्रेमावेशसे पूर्ण और रास-रससे विलसित हो रहा था।

श्रीकृष्णके मुखकी ओर दृष्टि लगाये अनेक सेविकाएँ यथास्थान खड़ी रहकर उनके संकेतोंको देख रही थीं और सम्मानपूर्वक चमर, व्यजन, माला, सुगन्ध, चन्दन, ताम्बूल, दर्पण, पानपात्र तथा अन्य क्रीडोपयोगी विविध वस्तुओंको पृथक्-पृथक् रख रही थीं। उनके वामभागमें विराजित श्रीमती राधिकारानी प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना करती हुई हँस-हँसकर उन्हें पान (ताम्बूल) अर्पित कर रही थीं। यह सब देखकर वह किशोरी प्रेमावेशसे विह्वल हो गयी। सर्वज्ञ हृषीकेशने उसके भावोंको समझ लिया और क्रीडावनमें उसके इच्छानुसार उसे सुख दिया। तदनन्तर शारदासे कहा—'इसे शीघ्र पश्चिम-सरोवरमें ले जाकर नहलाओ।'

शारदा उसे वहाँ ले गयी और क्रीडासरमें स्नान करनेके लिये कहा। सरोवरके भीतर जाते ही वह पुनः 'अर्जुन' बन गयी। उसी समय वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उन्होंने अर्जुनको खिन्न तथा हतप्रभ देखकर प्रेमपूर्वक हाथसे स्पर्श करके उन्हें पूर्ववत् स्वस्थ करते हुए कहा—'अर्जुन! तुम मेरे प्रिय सखा हो, इस त्रिलोकीमें तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी मेरा यह प्रेमलीला-रहस्य नहीं जानता। देखो, इसे कभी कहीं प्रकाशित न करना।'

(पद्मपुराणके आधारपर)

अचिन्त्य-शक्ति त्रिपुराम्बा

परशुरामजीसे त्रिपुराम्बाके स्वरूपका निरूपण करते हुए गुरु दत्तात्रेयजीके वचन हैं—'राम! उस पराशक्तिके माहात्म्यका वर्णन कौन कर सकता है? सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् लोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी अभीतक उस शक्तिका न स्वरूप जानते हैं, न स्थान ही जानते हैं। वस्तुतः 'वह शक्ति ऐसी है'—ऐसा कोई भी यथार्थतः वर्णन नहीं कर सकता। वेद-शास्त्र-तन्त्र आदि भी उसके वर्णनमें असमर्थ हैं।' (हारितायनसंहिता)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गायत्री-जपसे विरतिका दुष्परिणाम

भगवती गायत्री ब्रह्मशक्ति हैं। उनकी अपार कृपासे कोई भी शक्तिशाली हो सकता है। राक्षसराज अरुण उनकी कृपासे ही देवजित् हुआ था और उनकी कृपासे वञ्चित होकर ही भगवती भुवनेश्वरीसे प्रेरित दिव्य भ्रमरोंद्वारा कालका ग्रास भी हुआ। भगवान् नारायणने नारदजीको यह लोक-पावनी कथा सुनाते हुए बतलाया है—

'पूर्व समयकी बात है, अरुण नामक एक महान् पराक्रमी दैत्य था। वह महान् दुरात्मा और देवद्वेषी था। उसने देवताओंसे सम्पूर्ण अधिकार छीननेके उद्देश्यसे हिमालयपर जाकर कठोर तप किया। वह हजारों वर्षोंतक कठिन तपस्या करता रहा। उसके तपके घोर प्रभावसे सम्पूर्ण त्रिभुवन आतङ्कित हो उठा। तब स्वयं ब्रह्माजी अपनी शक्ति गायत्रीके साथ उसके पास गये। उन्होंने उस दानवराजसे कहा—'वत्स! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ, अपना अभीष्ट माँग लो।'

दानवराज ब्रह्माजीको आया देखकर प्रसन्न हुआ और उसने पितामहसे कभी न मरनेका वरदान माँगा। ब्रह्माजीने सस्नेह उसे समझाया—'संसारमें जन्म लेनेवाला अवश्य ही कभी-न-कभी मृत्युको प्राप्त होता है। अतः तुम इसके अतिरिक्त कोई अन्य वर माँग लो।' अरुणने सोच-विचारकर उनसे कहा—'तब मुझे यह वर देनेकी कृपा कीजिये कि मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री अथवा पुरुषसे मेरी मृत्यु हो और न दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे मार सके। साथ ही आप मुझे ऐसा महान् बल भी प्रदान करें कि मैं सम्पूर्ण देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।' ब्रह्माजी उसकी तपस्यासे संतुष्ट तो थे ही, अतः 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

अब क्या था, अरुण अपने बलाभिमानमें मत्त रहने लगा। उसने सम्पूर्ण देवताओंको खेल-ही-खेलमें जीत लिया। सभी देवता श्रीहीन हो गये। अरुण अपने दानव-बन्धुओं तथा सेवकोंके साथ त्रिभुवनपर निष्कण्टक राज्य करने लगा। वह निरन्तर गायत्री-शक्तिकी उपासनामें लगा रहता था, जिससे अमित तेजस्वी हो गया और सर्वत्र उसकी विजय-पताका फहराने लगी।

दानवराज अरुणके आतङ्कसे पीड़ित सभी देवगण भगवान् शंकरके पास गये। सदाशिवने देवताओंकी इच्छा जान ली। पर वे जानते थे कि अरुण गायत्रीके जपसे शक्तिशाली है और उसमें ब्रह्माजीके वरदानके कारण अद्भुत शक्ति है। वह किसी भी प्रकारके निमित्तसे वध्य नहीं है। उसी समय आकाशवाणी हुई—'तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो। वे ही कार्य सिद्ध करेंगी। यदि दानवराज गायत्रीके जपसे विरत हो जाय तो उसकी मृत्युयोग-परिस्थिति बन सकती है।' आकाशवाणी सुनकर देवताओंके जानमें जान आयी। वे अपने गुरु बृहस्पतिजीके पास गये। उनसे निवेदन किया कि वे किसी प्रकार दानवराजको गायत्रीके जपसे विरत कर दें। देवता आकाशवाणीके अनुरूप भगवती भुवनेश्वरीकी उपासनाके लिये अन्यत्र चले गये और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक देवी-प्रणव (ह्रीं)का जप करते हुए देवीके चरणोंका चिन्तन करने लगे।

उधर देवगुरु देवहित-सम्पादनार्थ दानवराजके पास पहुँचे। अरुणने देवगुरुको आया देखकर पूछा—'मुने! देवपक्षके होते हुए भी आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है?' वाणीपर असाधारण अधिकार रखनेवाले गुरु बृहस्पतिने उससे कहा—'दानवेन्द्र! हम जिन देवीकी उपासना करते हैं, तुम भी निरन्तर उन्हींकी उपासना करते हो। अतएव तुम हमारे पक्षपाती हो ही गये। फिर तुम यह कैसे कहते हो कि मैं तुम्हारा पक्षपाती नहीं हूँ।' देवगुरुकी बात सुनकर देवमायासे मोहित दानवेन्द्र अरुण विमूढ़ हो गया। उसने अभिमानमें आकर कहा—'अच्छा, अब मैं गायत्रीकी उपासना नहीं करूँगा।' ऐसा कहकर वह गायत्रीकी उपासनासे विरत हो गया। ऐसा करते ही उसका तेज क्षीण हो गया। बृहस्पतिजीने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनी सफलताका समाचार जब देवताओंको दिया, तब वे अत्यधिक उत्साहित हुए और निरन्तर देवीकी उपासनामें उत्तरोत्तर निमग्न रहने लगे।

कुछ समय बाद जगत्‌का कल्याण चाहनेवाली भगवती भुवनेश्वरी प्रकट हुईं। वे अपने सौन्दर्यसे कोटि कन्दर्पोंको भी लज्जित कर रही थीं। करोड़ों सूर्योंके समान उनका प्रकाश उनके श्रीविग्रहको आलोकित कर रहा था। उनके वस्त्र, अनुलेपन आदि सभी दिव्य थे। उनके गलेमें विचित्र माला शोभायमान थी। उनकी मुट्ठी अद्भुत भ्रमरोंसे भरी थी। नाना भ्रमरोंसे गुञ्जित पुष्पोंकी अद्भुत माला उनके गलेको सुशोभित कर रही थीं। वे चारों ओरसे असंख्य भ्रमरोंसे घिरी हुई थीं। वे भ्रमर 'ह्रीं' बीजका नाद कर रहे थे।

देवताओंने देवीको अपनी स्तुतियोंसे प्रसन्न किया। देवताओंपर कृपा करनेवाली भगवती भुवनेश्वरीने तुरंत अरुणको समाप्त करनेके उद्देश्यसे अपने भ्रमरोंको प्रेरित किया। अगणित भ्रमर समस्त सृष्टिमें घोर अन्धकारका-सा दृश्य उत्पन्न करते हुए अरुण और उसकी विशाल सेनापर टूट पड़े। उन्होंने अरुणसहित सबकी छातीको काट डाला। दानवराज गायत्री-शक्तिके अभावमें निस्तेज तो हो ही गया था, इन विचित्र भ्रमरोंके दिव्य प्रतापसे मारा गया। इस प्रकार ब्रह्मासे प्राप्त वरकी सत्यता भी रह गयी और अटल सिद्धान्तका निर्वाह भी हो गया। गायत्रीकी शक्ति ही उस दानवकी शक्ति थी, उससे विरति उसके मरणका कारण बन गयी।

(देवीभागवतके आधारपर)

जगदम्बाकी असीम करुणा

हिमाचलनन्दिनी भगवती पार्वतीने भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये घोर तप किया। एक दिन वे हिमालयके शिलाखण्डपर ध्यान-मग्न बैठी थीं, तभी उन्हें किसी बालकके रोनेका आर्त स्वर सुनायी दिया। बालक चिल्ला रहा था—'हाय-हाय! मैं छोटा बालक हूँ, मुझे ग्राहने पकड़ लिया है। यह अभी मुझे चबा जायगा। अपने माता-पिताका मैं ही एकलौता पुत्र हूँ। कोई दौड़ो, मुझे बचाओ, हाय! मैं मरा।'

बालकका आर्तनाद सुनकर पार्वतीजी दौड़ीं। सरोवरमें एक बड़े ही सुन्दर तेजस्वी बालकको ग्राहद्वारा पकड़ा हुआ देखकर उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया। तब वे बोलीं—'ग्राहराज! बालक बड़ा दीन है, कैसा करुण-क्रन्दन कर रहा है, इसे तुरंत छोड़ दो।' ग्राह बोला—'देवि! दिनके छठे भागमें जो मेरे पास आ जायगा, वही मेरा आहार होगा। यह बालक इसी कालमें यहाँ आया है, अतएव ब्रह्माने इसे मेरे आहारके रूपमें ही भेजा है, इसे मैं नहीं छोड़ सकता।' देवीने कहा—'मैंने हिमालयकी चोटीपर रहकर बड़ा तप किया है, उसीके बल-प्रभावसे तुम इसे छोड़ दो।' ग्राहने कहा—'यह उत्तम तप यदि तुम मुझे अर्पण कर दो तो मैं इसे छोड़ दूँ।' पार्वतीने कहा—'ग्राहराज! इस तपकी तो बात ही क्या है, मैंने इस शरीरसे आजन्म जो कुछ भी पुण्य-सञ्चय किया है, वह सब तुम्हें अर्पण करती हूँ, तुम इस बालकको छोड़ दो।' पार्वतीके इतना कहते ही ग्राहका शरीर तपके दिव्य तेजसे चमक उठा। उसके शरीरकी प्रभा मध्याह्नके सूर्यके सदृश तेजोमयी हो गयी। ग्राहने कहा—'देवि! तुमने यह क्या किया? थोड़ा विचार तो करो कि कितना कष्ट सहकर कितने ही वर्षोंतक तुमने किस महान् उद्देश्यसे तप किया था। उस महान् तपका त्याग तुम्हारे लिये उचित नहीं है। फिर भी तुम्हारी ब्राह्मण-भक्ति और दीन-सेवासे मैं अत्यन्त संतुष्ट हूँ और तुम्हें वरदान देता हूँ—तुम अपनी तपस्याको भी वापस लो और इस बालकको भी।' इसपर महाव्रता पार्वतीने कहा—'ग्राहराज! प्राण देकर भी इस दीन ब्राह्मणकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य था। तप तो फिर भी हो सकता है, पर यह बालक फिर कहाँसे आयेगा? मैंने सब कुछ सोच-विचारकर ही इस बालकको बचाया है और तुम्हें तपस्या दी है। दी हुई वस्तुको मैं वापस नहीं ले सकती। बस, तुम इस बालकको छोड़ दो।' इस बातको सुनकर ग्राह बालकको छोड़कर अन्तर्धान हो गया।

अपना तप चला गया—ऐसा सोचकर पार्वतीने पुनः तपस्या करनेका उपक्रम किया। तभी शंकरजीने प्रकट होकर कहा—'देवि! तुम्हें फिरसे तप नहीं करना पड़ेगा, तुमने यह तप मुझको ही दिया है। वह बालक तथा ग्राह मैं ही था। तुम्हारी दया और त्यागकी महिमा देखनेके लिये ही मैंने यह लीला रची थी। तपस्या-दानके फलस्वरूप तुम्हारी तपस्या अब सहस्रगुनी होकर अक्षय हो गयी है।' भगवान् शिवके इस कृपा-कौतुकपर देवी मुग्ध एवं प्रसन्न हो गयीं।

(शिवपुराणके आधारपर)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानवताकी रक्षा एवं देशकी उन्नतिके लिये गोरक्षा अनिवार्य

[महामहिम राष्ट्रपतिका उद्‌बोधन]

गत १८ नवम्बर, १९८६को वाराणसीमें भारतके राष्ट्रपति महामहिम श्रीज्ञानी जैलसिंहजीने 'श्रीकाशी जीवदया-विस्तारिणी-गोशाला' के शताब्दी-समारोहमें गोरक्षाके सम्बन्धमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश डालते हुए उद्‌बोधन किया। उन्होंने कहा कि जो राष्ट्र प्राचीन इतिहास, परम्परा और अपनी संस्कृतिको भूल जाता है, वह मिट जाता है। कौमें वे ही जीवित रहती हैं और उन्नति करती हैं, जो अपने पुराने इतिहास, परम्परा और संस्कृतिके साथ चलती हुई दुनियाके वर्तमान प्रकारके साथ आगे बढ़ती हैं। इसलिये अपनी संस्कृतिको सुरक्षित रखना सबका कर्तव्य है। गाय भारतीय धर्म और संस्कृतिका प्रमुख आधार है। भारतके कल्याण तथा आर्थिक विकासके लिये गौका पालन-पोषण तथा गोवंशका संवर्धन बहुत आवश्यक है। गाय केवल हिंदुओंकी ही माता नहीं, मनुष्यमात्रकी माता है। जैसे मनुष्यको मारना अपराध है, वैसे ही पशुको भी मारना पाप है और जो पशु आपकी परवरिश करे, जिसका दूध पीकर आप बड़े हुए हैं, उसे मारना तो बहुत बड़ा पाप है। गायकी मौतके सवालपर स्वयं मर जाय, पर उसे मरने न दे अर्थात् अपनी कुर्बानी करके भी गायकी रक्षा करनी चाहिये·······आदि महत्त्वपूर्ण बातें राष्ट्रपति महोदयने बड़े मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त कीं। गुरुनानक एवं भगवान् श्रीकृष्णका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि इन महापुरुषोंने गो-सेवाको ही अपना सम्बल बनाया था। गोरक्षाके राष्ट्रिय महत्त्वपर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि जीवनमें जैसे वृक्षोंका बड़ा महत्त्व है वैसे ही गायका भी महत्त्व है। अतः सरकारको वृक्षारोपण-कार्यक्रमकी तरह ही गो-रक्षा और गो-संवर्धनका कार्यक्रम भी चलाना चाहिये। हरितक्रान्तिसे देश कृषिके क्षेत्रमें आत्मनिर्भर हुआ, अब गो-सेवा करके श्वेत (दुग्ध)-क्रान्तिको देशमें लानेकी आवश्यकता है, जिससे देशमें गो-दुग्ध सबको प्राप्त हो सके।

गोहत्या-बंदीके सम्बन्धमें राष्ट्रपतिजीने कहा कि मुसलमान और ईसाई भाई गोहत्या नहीं करते। वे गायकी उपयोगिताको अच्छी तरह समझते हैं। इसके बावजूद भी सम्पूर्ण देशमें गोहत्या अबतक बंद न हो सकी, इसमें कोई अन्ताराष्ट्रिय दबाव या झगड़ा हो तो मुझे मालूम नहीं। राष्ट्रपतिजीकी यह उक्ति अत्यन्त रहस्यमय और महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त और क्या अन्ताराष्ट्रिय कारण हो सकता है कि व्यापारिक लाभके लिये भारतसे गोमांसका अत्यधिक मात्रामें निर्यात अरब आदि अन्य देशोंको निरन्तर किया जा रहा है। यह इस देशके लिये कितनी लज्जाजनक बात है कि संत-महात्माओंकी इस पवित्र भूमिपर, जहाँ स्वयं भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णने अवतार लिया, हजारों-हजारों गायें प्रतिदिन काटी जाती हैं और उनका मांस तुच्छ पैसेके लिये दूसरे देशोंको भेजा जाता है। जनता और सरकार—दोनोंको इस बातपर गम्भीररूपसे विचार करनेकी आवश्यकता है।

मैं भी गुनहगार हूँ—महामहिम राष्ट्रपतिजीने एक और महत्त्वपूर्ण बात स्पष्टरूपसे ही स्वीकार की। उन्होंने कहा कि संत विनोबा भावेने गोहत्या-बंदीके लिये आमरण-व्रत रखा, तब केन्द्रके विभिन्न नेताओं तथा सत्ताधारियोंने गो-वध-बंदीका पूर्ण आश्वासन विनोबाजीको दिया था, पर अबतक पूर्णरूपसे गोहत्या बंद न हो सकी। इसके लिये राष्ट्रपतिजीने स्वयंको भी दोषी बताया और

CC-0. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा कि 'उन दिनों सत्तामें रहनेके कारण मैं भी गुनहगार हूँ।'—यह स्वीकारोक्ति महामहिम राष्ट्रपतिजीकी स्पष्टवादिताका परिचायक है। राष्ट्रके सर्वोच्च पदपर आसीन व्यक्तिद्वारा यदि कोई तथ्य उद्घाटित होता है तो जनता तथा सरकारको उसपर विशेष ध्यान देना चाहिये तथा समुचित कदम उठाकर उसका कार्यान्वयन भी करना चाहिये। कहते हैं कि सवेरेका भूला हुआ शामको घर आ जाय तो उसे भूला हुआ नहीं मानते। पूर्वकी भूलोंको यदि आज भी हम सुधार लें तो यह हमारे लिये गौरवकी बात होगी। एक ओर जहाँ हम अपनी संस्कृतिको अक्षुण्ण रखनेकी बात करते हैं, वहाँ दूसरी ओर यदि भारतीय संस्कृतिके आधार 'गौ'की, जिसे हम 'माँ' कहकर अपनी सर्वोपरि श्रद्धा प्रदान करते हैं, रक्षा नहीं कर सकते तो इससे बढ़कर हमारे लिये कलंककी बात और क्या होगी?

हम आशा करते हैं कि हमारे लोकप्रिय प्रधान मन्त्री तथा नेतागण इस महत्त्वपूर्ण विषयपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करेंगे तथा आवश्यकतानुसार संविधानमें संशोधनका एक सुदृढ केन्द्रीय कानून बनाकर सम्पूर्ण देशमें गो-वंशकी हत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लगायेंगे, जो वास्तविकरूपसे भविष्यमें हमारी सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नतिका आधार होगा।

देवीमयी

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥
इति विचिन्त्य शिवे शमिताशिवे जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

—महामाहेश्वर आचार्य अभिनव गुप्त

'हे जगदम्बिके! संसारमें कौन-सा वाङ्मय ऐसा है, जो तुम्हारी स्तुति नहीं है; क्योंकि तुम्हारा शरीर तो सकलशब्दमय है। हे देवि! अब मेरे मनमें संकल्प-विकल्पात्मक रूपसे उदित होनेवाली एवं संसारमें दृश्यरूपसे सामने आनेवाली सम्पूर्ण आकृतियोंमें आपके स्वरूपका दर्शन होने लगा है। हे समस्त अमङ्गलोंका ध्वंस करनेवाली कल्याणस्वरूपा शिवे! इस बातको सोचकर अब बिना किसी प्रयत्नके ही सम्पूर्ण चराचर जगत्‌में मेरी यह स्थिति हो गयी है कि मेरे समयका कोई क्षुद्रतम अंश भी तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा अथवा ध्यानसे रहित नहीं है। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपोंके प्रति यथोचितरूपसे व्यवहृत होनेके कारण तुम्हारी पूजाके रूपमें परिणत हो गये हैं।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इच्छुक सज्जन वर्तमान वर्ष (सन् १९८७) का विशेषाङ्क 'शक्ति-उपासना-अङ्क' मँगानेमें कृपया शीघ्रता करें

पराम्बा भगवतीकी अहैतुकी कृपानुकम्पासे 'कल्याण' के वर्तमान ६१वें वर्षका विशेषाङ्क 'शक्ति-उपासना-अङ्क' फरवरी १९८७ के परिशिष्टाङ्कसहित छपकर तैयार है जिसका प्रेषण ग्राहकोंको निरन्तर किया जा रहा है। इस अङ्ककी पहलेसे ही अत्यधिक माँग होनेसे यद्यपि इसका संस्करण गतवर्षकी अपेक्षा इस वर्ष अधिक छापा गया है, तथापि इसकी माँग और भी अधिक होनेकी आशा है। हम यह चाहते हैं कि जो सज्जन अबतक 'कल्याण'के ग्राहक नहीं हैं अथवा किसी कारणवश उनके पास 'कल्याण' जाना बंद हो गया है, ऐसे अपने परिचितोंको भी आप कृपापूर्वक यह सूचित कर दें कि यदि वे 'कल्याण'के (उपर्युक्त विशेषाङ्कका) ग्राहक बनना चाहते हों तो इस वर्षका वार्षिक शुल्क ३०.०० (तीस रुपये) मात्र शीघ्रातिशीघ्र मनीआर्डर अथवा बैंक-ड्राफ्टद्वारा अग्रिम भेजकर चिरप्रतीक्षित इस विशेषाङ्कको प्राप्त करनेमें किसी तरहका विलम्ब न करें, अन्यथा 'कल्याण'के पिछले विशेषाङ्कोंकी तरह इसके भी शीघ्र समाप्त हो जानेपर प्रेमी सज्जनोंको निराश होना पड़ सकता है।

'कल्याण'के नामपर अवैध धन-वसूली करनेवालोंसे सावधान रहें

हमें इधर बराबर इस आशयकी सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं कि कुछ लोग 'कल्याण'का आजीवन ग्राहक बनानेके नामपर अवैध और अनुचित धन-वसूली करके जनसाधारणको धोखा देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यह अत्यन्त गर्हित, अनैतिक और घोर निन्दनीय कार्य है। सभी लोगोंको ऐसे असामाजिक और अवाञ्छनीय तत्त्वोंसे सतत सावधान रहते हुए, कदापि भूलकर भी 'कल्याण' अथवा गीताप्रेसके नामपर कोई धनराशि उन्हें नहीं देनी चाहिये। यह ध्यान रहे कि ऐसे किसी भी अनधिकृत व्यक्तिसे 'कल्याण' अथवा गीताप्रेसका किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं है और न संस्थाकी ओरसे 'कल्याण'का आजीवन अथवा सामान्य ग्राहक बनानेके लिये भी, किसी भी व्यक्तिको अधिकृत ही किया गया है।

'कल्याण'-प्रेमी सभी सज्जनोंसे विनम्र निवेदन है कि वे स्वयं तथा अपने उन मित्रोंको भी, जो इस समय 'कल्याण'के ग्राहक नहीं हैं, कृपया यह अवश्य सूचित कर दें कि समाज और संस्थाको धोखा देनेवाले ऐसे किसी भी व्यक्तिसे भेंट होनेपर, उसके इस जन-विरोधी कार्यके लिये कानूनके अन्तर्गत गिरफ्तार कराकर उसे शासनसे दण्डित करानेके लिये उचित प्रयास करना चाहिये। साथ ही तद्विषयक सूचना हमारे यहाँ भी भेजनेकी कृपा करनी चाहिये। इस कृपापूर्ण सहयोगके लिये हम आपके सदैव आभारी रहेंगे।

'कल्याण'के निमित्त जिन महानुभावोंको कोई शुल्क-राशि भेजनी हो तो वे उसे व्यक्तिगत रूपसे किसीको न देकर सीधे 'कल्याण'के निम्नलिखित पतेपर ही भेजनी चाहिये।

व्यवस्थापक — 'कल्याण' कार्यालय, ... गीताप्रेस, गोरखपुर ... (उ० प्र०)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गके आयोजनकी व्यवस्था है। वहाँ परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके वैशाख कृष्ण-पक्षके प्रथम सप्ताहमें (दिनाङ्क १५ अप्रैल १९९७ के बाद) पधारनेकी बात है। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गी भाई लोग तथा माताएँ-बहनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे गीताभवन पधारें। आमोद-प्रमोद (मनोरञ्जन) अथवा जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सभीको केवल सत्सङ्ग-लाभके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये एवं यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्ग, कथा-श्रवण तथा कीर्तन आदिके आयोजनोंमें अनिवार्यरूपसे सम्मिलित होना चाहिये।

जिन्हें नौकर, रसोइयाकी आवश्यकता हो, उन्हें यथासम्भव उनको अपने साथमें ही ले जाना चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर, रसोइयोंका मिलना कठिन है। माताएँ और बहनें पीहर या ससुराल-वालोंके (अथवा अन्य किसी निजी निकटके सम्बन्धीके) साथ ही वहाँ आयें, अकेली कदापि न आयें। अकेली आनेकी दशामें उन्हें स्थान मिलनेमें कठिनाई हो सकती है। गहने आदि जोखिमकी वस्तुएँ साथमें बिल्कुल नहीं ले आनी चाहिये। सत्सङ्गी भाइयोंको बहुत आवश्यक सामान ही अपने साथमें ले जाना चाहिये तथा अपने सामानकी पूरी सँभाल भी स्वयं ही रखनी चाहिये। जहाँतक बन पड़े, छोटे बच्चोंको साथमें न ले आयें। खान-पानकी वस्तुओंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, परंतु दूधके प्रबन्धमें बहुत कठिनाई है।

—व्यवस्थापक

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिकके सम्बन्धमें विवरण

१—प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२—प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,

३—मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये) जगदीशप्रसाद जालान,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४—सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५—उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके साझीदार हैं। | श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता, (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार) रजिस्टर्ड-धार्मिक संस्था।

मैं जगदीशप्रसाद जालान, गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दिनाङ्क १।३।१९९७

जगदीशप्रसाद जालान
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये
प्रकाशक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha